

२१/६१



॥ श्रीः ॥

# कुवलयानन्दकारिकाः ।



श्रीमद्रामजीभट्टतनयश्रीयुताशाधरभट्टप्रणीतया  
अलंकारदीपिकाव्याख्यया संचलिताः ।



मूल्यं १२ आणकाः ।

३१



॥ श्रीः ॥

# कुवलयानन्दकारिकाः ।

श्रीमद्रामजीभट्टतनयश्रीयुताशाधरभट्टप्रणीतया  
अलंकारदीपिकाव्याख्यया संवलिताः ।

इदं पुस्तकं

पणशीकरोपाह्वलक्ष्मणशर्मतनुजनुषा वासुदेवशर्मणा

मातृकाकोशयोजनपूर्वं संस्कृतम् ।

(तृतीयावृत्तिः)

तच्च

मुम्बय्यां

पाण्डुरङ्ग जावजी

इत्येतैः स्वीये निर्णयसागराख्यमुद्रणयन्त्रालये

मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।

शकाब्दाः १८४८, सनाब्दाः १९२७.

मूल्यं १२ आणकाः ।



॥ श्री ॥

# । अक्षरीकृतकामाख्याकु

अक्षरीकृतकामाख्याकु

। अक्षरीकृतकामाख्याकु

अक्षरीकृतकामाख्याकु

अक्षरीकृतकामाख्याकु

PUBLISHER:-Pandurang Jawaji, } 'Nirnaya-Sagar' Press,  
PRINTER:-Ramchandra Yesu Shedge, } 26-28, Kolbhat Lane, Bombay.

(अक्षरीकृतकामाख्याकु)

अक्षरीकृतकामाख्याकु

अक्षरीकृतकामाख्याकु

अक्षरीकृतकामाख्याकु

अक्षरीकृतकामाख्याकु

अक्षरीकृतकामाख्याकु

अक्षरीकृतकामाख्याकु

अक्षरीकृतकामाख्याकु

## प्रस्तावना ।

अथ प्रकाश्यतेऽयं कुवलयानन्दकारिकाख्यो ग्रन्थः श्रीमदाशाधर-  
पण्डितप्रणीतसुबोधव्याख्यासमलंकृतः सहृदयहृदयानन्दधुमाविष्क-  
र्तुम् । एतज्जीवातुभूतकुवलयानन्दप्रणेतुः सुगृहीतनाम्नो विद्वदग्रेसरस्य  
श्रीमदप्पय्यदीक्षितस्येतिवृत्तं साधनवैधुर्याद्यथावन्निर्णेतुमशक्यमेव ।  
एतद्विषयिणी किंवदन्ती चेत्थं श्रूयते—अयं हि पण्डितमूर्धन्यो द्राविडः  
श्रौतस्मार्तोभयकर्मकाण्डकलापचणः सर्वतन्त्रस्वतन्त्रः त्रिविधाघौघप-  
रम्परानिबर्हणैकबद्धपरिकरायां वाराणस्यां गतः कदाचित् प्रभाते  
कृतभागीरथीस्नानो निर्वर्तितप्रातराह्निको निजुनिकेतं प्रत्यागच्छन्  
घट्टे शयानं रमणीयरमणीदत्ताश्लेषं प्रावृताखिलवर्ष्माणमपि निर्मुक्त-  
विस्त्रसाधवलशिखं कंचन पुरुषमद्राक्षीत् । अब्रवीच्च तं सप्रतिघवि-  
स्मयकरुणाभिभूतः—

‘किं निःशङ्कं शेषे शेषे वयसि त्वमागते मृत्यौ ।’ इति ।

एतत्पदार्थमाकर्ण्योज्झितप्रावरणः पद्योद्धोषकं यावदवलोकयति स  
शयालुस्तावदेनं पण्डितराजं जगन्नाथरायं बुद्ध्वा श्रीमदप्पय्यदीक्षितो  
झटित्युत्तरार्धमभाषीत्—

‘अथवा सुखं शयीथा निकटे जागर्ति जाह्नवी भवतः ॥’ इति ।  
इत्याद्यैतिह्येनास्य पण्डितराजसमकालीनत्वमवगम्यते । सच पण्डित-  
राजः शहाजहानाख्ययवनसार्वभौमस्य सभास्तारधुर्य आसीत् ।  
अधिगतवांश्च निजानेकविद्याकलाकलापचमत्कारतोषितात्तस्मादेव  
पण्डितराजपदवीम् । स्थितश्च प्रथमे वयसि प्रायस्तत्रैव तत्सूनोर्दा-  
राशिकोहस्य समीपे । शहाजहानमहीपतिस्तु १६२८ तमे ख्रिस्ताब्दे  
नृपासनमधिरूढः, १६५८ तमे ख्रिस्ताब्दे औरङ्गजेबसंज्ञेन स्वपुत्रेण  
कारागारे निवेशितः, ततः १६६६ तमे ख्रिस्ताब्दे च पञ्चत्वमग-  
मत् । पण्डितराजोऽपि वार्धके श्रीकाशीक्षेत्र एव समनोवाक्कायं जग-  
दीशपरिचरणव्यापृतोऽनैषीदायुःशेषभागम् । एवं च ख्रिस्ताब्दीयस-  
प्तदशशतकमध्ये एव पण्डितराज आसीदिति स्फुटमेवेति रसगङ्गा-



धरप्रस्तावे निर्णीतवान् जयपुरमहाराजाश्रितः पण्डितवरो दुर्गाप्रसा-  
दशर्मा । तेन कुवलयानन्दप्रणेतुः श्रीमदप्पय्यदीक्षितस्य जीवनका-  
लोऽपि ख्रिस्ताब्दीयसप्तदशशतकमेवेत्यवसीयते ।

कुवलयानन्दस्य कोमलमतिबालानां दुरुहत्वात्केवलं कुवलयान-  
न्दकारिका एव पृथगुद्धृत्य श्रीमदाशाधरपण्डितेन सरलसुबोधव्या-  
ख्यया सनाथीकृतमिदं पुस्तकं महता प्रयासेन संपाद्यास्माभिः पूर्वं  
मुद्रितमासीत् तथापि तत्र पदच्छेदपरसवर्णादिवैकल्यं मूल्यमप्य-  
धिकमित्यापन्निरसनायाधुनाधुनिकप्रणालिकया यथाध्येतृबालमनोवि-  
नोदावहं स्यादिति व्याख्योदाहरणटिप्पण्यादिभिः श्लोकवर्णक्रमको-  
शेन च मण्डयित्वा पुस्तकरूपेण मुद्रितं सर्वेषामुपकाराय स्यादि-  
त्याशास्ते—

विदुषामनुचरः

पणशीकरोपाहो वासुदेवशर्मा ।



श्रीः ।

## कुवलयानन्दकारिकास्थालंकारानुक्रमः ।

| विषयः                               | पृष्ठं. | विषयः                            | पृष्ठं. |
|-------------------------------------|---------|----------------------------------|---------|
| <b>लक्ष्यलक्षणप्रकरणम् १</b>        |         | तुल्ययोगिता ... .. २२            |         |
| मङ्गलाचरणम् ... .. १                |         | तुल्ययोगिताभेदः ... .. २३        |         |
| ग्रन्थप्रतिज्ञा ... .. २            |         | दीपकालंकारः ... .. २४            |         |
| उपमालंकारः ... .. ३                 |         | आवृत्तिदीपकालंकारः ... .. २५     |         |
| लुप्तोपमाष्टप्रकारा ... .. ४        |         | प्रतिवस्तूपमालंकारः ... .. २६    |         |
| उपमानालंकारः ... .. ६               |         | दृष्टान्तालंकारः ... .. २६       |         |
| प्रतीपालंकारः ... .. ७              |         | निदर्शनालंकारः ... .. २७         |         |
| प्रतीपभेदः ... .. ७                 |         | निदर्शनाभेदाः ... .. २८          |         |
| रूपकालंकारः ... .. ९                |         | व्यतिरेकालंकारः ... .. २९        |         |
| परिणामालंकारः ... .. ११             |         | सहोक्तिरलंकारः ... .. २९         |         |
| उल्लेखालंकारः ... .. ११             |         | विनोक्त्यलंकारः ... .. ३०        |         |
| स्मृति-भ्रान्ति-संदेहालंकारः ... १२ |         | समासोक्त्यलंकारः ... .. ३०       |         |
| शुद्धापह्नुयलंकारः ... .. १३        |         | परिकरालंकारः ... .. ३१           |         |
| हेत्वपह्नुयलंकारः ... .. १३         |         | परिकराङ्कुरालंकारः ... .. ३१     |         |
| पर्यस्तापह्नुयलंकारः ... .. १४      |         | श्लेषालंकारः ... .. ३२           |         |
| भ्रान्तापह्नुयलंकारः ... .. १४      |         | अप्रस्तुतप्रशंसालंकारः ... .. ३४ |         |
| कैतवापह्नुयलंकारः ... .. १५         |         | प्रस्तुताङ्कुरालंकारः ... .. ३६  |         |
| छेकापह्नुयलंकारः ... .. १५          |         | पर्यायोक्तालंकारः ... .. ३७      |         |
| संभावनालंकारः ... .. १६             |         | व्याजनिन्दालंकारः ... .. ३८      |         |
| वस्तूत्प्रेक्षालंकारः ... .. १७     |         | आक्षेपालंकारः ... .. ३८          |         |
| हेतूत्प्रेक्षालंकारः ... .. १७      |         | निषेधाभासोऽप्याक्षेपः ... .. ३९  |         |
| फलोत्प्रेक्षालंकारः ... .. १८       |         | आक्षेपान्तरम् ... .. ३९          |         |
| स्वरूपातिशयोक्तिः ... .. १९         |         | विरोधाभासालंकारः ... .. ३९       |         |
| सापह्नुवातिशयोक्तिः ... .. १९       |         | विभावनालंकारः ... .. ४०          |         |
| भेदकातिशयोक्तिः ... .. २०           |         | कार्योत्पत्त्यलंकारः ... .. ४१   |         |
| संबन्धातिशयोक्तिः ... .. २०         |         | अन्यकार्योत्पत्तिः ... .. ४१     |         |
| अक्रमातिशयोक्तिः ... .. २१          |         | विभावनाभेदः ... .. ४२            |         |
| चपलातिशयोक्तिः ... .. २१            |         | विभावनालंकारः ... .. ४३          |         |
| अत्यन्तातिशयोक्तिः ... .. २२        |         | विशेषोक्तिरलंकारः ... .. ४३      |         |



| विषयः                        | पृष्ठं. | विषयः                       | पृष्ठं. |
|------------------------------|---------|-----------------------------|---------|
| असंभवालंकारः ... ..          | ४४      | विषादनालंकारः ... ..        | ६७      |
| असंगत्यलंकारः ... ..         | ४४      | उल्लासालंकारः ... ..        | ६८      |
| विषमालंकारः ... ..           | ४६      | अवज्ञालंकारः ... ..         | ६९      |
| विषमभेदः ... ..              | ४७      | अनुज्ञालंकारः ... ..        | ७०      |
| समालंकारः ... ..             | ४७      | लेशालंकारः ... ..           | ७१      |
| विचित्रालंकारः ... ..        | ४९      | मुद्रालंकारः ... ..         | ७१      |
| अधिकालंकारः ... ..           | ४९      | रत्नावल्यलंकारः ... ..      | ७२      |
| अल्पालंकारः ... ..           | ५०      | तद्गुणालंकारः ... ..        | ७२      |
| अन्योन्यालंकारः ... ..       | ५०      | पूर्वरूपालंकारः ... ..      | ७३      |
| विशेषालंकारः ... ..          | ५१      | अतद्गुणालंकारः ... ..       | ७४      |
| विशेषमलंकारः ... ..          | ५१      | अनुगुणालंकारः ... ..        | ७५      |
| व्याघातालंकारः ... ..        | ५२      | मीलितालंकारः ... ..         | ७५      |
| कारणमालालंकारः ... ..        | ५३      | सामान्यालंकारः ... ..       | ७५      |
| एकावत्यलंकारः ... ..         | ५३      | उन्मीलितविशेषकौ ... ..      | ७६      |
| मालादीपकालंकारः ... ..       | ५४      | गूढोत्तरालंकारः ... ..      | ७६      |
| सारालंकारः ... ..            | ५५      | चित्रोत्तरालंकारः ... ..    | ७७      |
| यथासंख्यालंकारः ... ..       | ५६      | सूक्ष्मालंकारः ... ..       | ७७      |
| पर्यायालंकारः ... ..         | ५६      | पिहितालंकारः ... ..         | ७८      |
| परिवृत्त्यलंकारः ... ..      | ५७      | व्याजोक्त्यलंकारः ... ..    | ७९      |
| परिसंख्यालंकारः ... ..       | ५८      | गूढोक्त्यलंकारः ... ..      | ७९      |
| विकल्पालंकारः ... ..         | ५८      | विवृतोक्त्यलंकारः ... ..    | ७९      |
| समुच्चयालंकारः ... ..        | ५९      | युक्त्यलंकारः ... ..        | ८०      |
| कारकदीपकालंकारः ... ..       | ६०      | लोकोक्त्यलंकारः ... ..      | ८०      |
| समाध्यलंकारः ... ..          | ६०      | छेकोक्त्यलंकारः ... ..      | ८०      |
| प्रत्यनीकालंकारः ... ..      | ६१      | वक्रोक्त्यलंकारः ... ..     | ८१      |
| काव्यार्थापत्यलंकारः ... ..  | ६१      | काकुवक्रोक्त्यलंकारः ... .. | ८२      |
| काव्यलिङ्गालंकारः ... ..     | ६२      | स्वभावोक्त्यलंकारः ... ..   | ८२      |
| अर्थान्तरन्यासालंकारः ... .. | ६२      | भाविकालंकारः ... ..         | ८३      |
| विकस्त्रालंकारः ... ..       | ६३      | उदात्तालंकारः ... ..        | ८३      |
| प्रौढोक्त्यलंकारः ... ..     | ६४      | उदात्तेन्द्रियः ... ..      | ८३      |
| संभावनालंकारः ... ..         | ६४      | अत्युक्त्यलंकारः ... ..     | ८४      |
| मिथ्याध्यवसित्यलंकारः ... .. | ६५      | निरुक्त्यलंकारः ... ..      | ८४      |
| ललितालंकारः ... ..           | ६५      | प्रतिषेधालंकारः ... ..      | ८४      |
| प्रहर्षणालंकारः ... ..       | ६६      | विध्यलंकारः ... ..          | ८५      |



| विषयः                | पृष्ठं. |
|----------------------|---------|
| हेत्वलंकारः ... ..   | ८५      |
| हेत्वलंकारभेदः... .. | ८५      |

उद्दिष्टालंकारप्रकरणम् २

|                          |    |
|--------------------------|----|
| रसवदलंकारः ... ..        | ८७ |
| प्रेयोलंकारः ... ..      | ८८ |
| ऊर्जस्व्यलंकारः ... ..   | ८८ |
| समाहितालंकारः ... ..     | ८९ |
| भावोदयालंकारः ... ..     | ८९ |
| भावसंख्यलंकारः ... ..    | ८९ |
| भावशबलालंकारः ... ..     | ८९ |
| प्रत्यक्षालंकारः ... ..  | ९० |
| प्रतीत्यलंकारः ... ..    | ९० |
| उपमानालंकारः ... ..      | ९० |
| शब्दालंकारः ... ..       | ९१ |
| ऐतिह्यालंकारः ... ..     | ९१ |
| अर्थापत्त्यलंकारः ... .. | ९१ |
| अलंक्रियालंकारः ... ..   | ९२ |
| संभवालंकारः ... ..       | ९२ |
| श्रुत्यलंकारः ... ..     | ९२ |

| विषयः                    | पृष्ठं. |
|--------------------------|---------|
| लिङ्गालंकारः ... ..      | ९३      |
| आचारालंकारः ... ..       | ९३      |
| आत्मतुष्ट्यलंकारः ... .. | ९३      |

परिशेषप्रकरणम् ३

|                           |    |
|---------------------------|----|
| संसृष्ट्यलंकारः ... ..    | ९४ |
| अङ्गाङ्गीभावसंकरः ... ..  | ९४ |
| समप्राधान्यसंकरः ... ..   | ९५ |
| संदेहसंकरः ... ..         | ९५ |
| वाचकानुप्रवेशसंकरः ... .. | ९५ |
| चित्रसंकरः ... ..         | ९६ |

शब्दालंकारप्रकरणम् ४

|                                |     |
|--------------------------------|-----|
| खङ्गबन्धादयः ... ..            | ९७  |
| अनुप्रासश्चतुर्विधः ... ..     | ९७  |
| लाटानुप्रासः ... ..            | ९८  |
| वृत्त्यनुप्रासः ... ..         | ९८  |
| छेकानुप्रासः ... ..            | ९९  |
| यमकालंकारः ... ..              | ९९  |
| पुनरुक्तप्रतीकाशालंकारः ... .. | १०० |

समाप्तेयं कुवलयानन्दकारिकाणां विषयानुक्रमणिका ।





श्रीः ।

## कुवलयानन्दकारिकाः ।

अलंकारदीपिकाख्यव्याख्यासंवलिताः ।

लक्ष्यलक्षणप्रकरणम् ।

श्रीकृष्णाय नमः ।

शिवयोस्तनयं नत्वा गुरुं च धरणीधरम् ।

कुर्वे कुवलयानन्दकारिकादीपिकां मुदे ॥ १ ॥

आशाधरेण कविना रामजीभट्टसूनुना ।

क्रियते कारिकाटीका बालानामुपकारिणी ॥ २ ॥

अथ तत्रभगवान्प्रय्यदीक्षितनामा कविः संहृदयहृदयानन्दार्थ-  
मर्थालंकाराणां लक्ष्यलक्षणोपेताः कारिकाः कृत्वा तद्व्याख्यानरूपं  
कुवलयानन्दख्यं ग्रन्थं कृतवान् । कारिकाश्च तत उद्धृत्य क्रमेण  
लिखितवान् । तत्र निःप्रत्यूहार्थं मङ्गलमाचरति—

मङ्गलाचरणम् ।

परस्परतपःसंपत्फलायितपरस्परौ ।

प्रपञ्चमातापितरौ प्राञ्चौ जायापती स्तुमः ॥ १ ॥

परस्परेति ॥ वयं परस्परस्य तपःसंपदा अन्योन्यतपोलक्ष्म्या फ-  
लायितं फलवदाचरितं परस्परं याभ्यां तौ तथोक्तौ । तपोलक्ष्मीं लब्ध्वेव  
संबन्धतया भासमानौ वस्तुतस्तु नित्यसंबन्धावित्यर्थः । प्रपञ्चस्य  
विश्वस्य मातापितरौ जनकौ । प्रकृतिपुरुषरूपत्वादिति भावः । प्रकर्षेण  
अञ्चतः पूजाविषयीभवत इति प्राञ्चौ । अर्हादीनां पूजाविषयीभवनमर्थ  
इति धातुवृत्तिकारः । यद्वा प्रकर्ष अञ्चतो गच्छतस्तौ प्राञ्चौ । प्रकर्ष-  
युक्तावित्यर्थः । जायापती दम्पती पर्यायोक्तविधया पार्वतीपरमेश्वरावि-  
त्यर्थः । स्तुमः वर्णयामः । वर्णनं हि तदुत्कर्षकथनं स्वापकर्षकथनं च

१ शब्दापशब्दज्ञानरहिता बाला नतु स्तनंधयाः । २ काव्यवासनापरिपक्वबुद्धयः  
सहृदयाः । ३ मत्तस्त्वमुत्कृष्टः श्रेष्ठः । त्वत्तोऽहं निकृष्ट इति ।



वाचिकनमस्कारत्वेन परिणमतीति नमस्कारात्मकं मङ्गलमेतत् । 'अ-  
स्मदो द्वयोश्च' इति कर्तृबहुवचनं तदनुसारेण क्रियायाश्चेति संक्षेपः १

अध्येतृणां सिद्ध्यर्थं पुनर्मङ्गलमाचरति—

अमरीकबरीभारभ्रमरीमुखरीकृतम् ।

दूरीकरोतु दुरितं गौरीचरणपङ्कजम् ॥ २ ॥

अमरीति ॥ अमरीणां देवीनां कबरीभारेषु वेणीगुम्फेषु या  
भ्रमर्यः सौरमलोभादवस्थितास्ताभिर्मुखरीकृतं शब्दायमानं कृतम् ।  
योग्यत्वात्स्त्रीलिङ्गनिर्देशः पुंसां हि दूरे स्थितिर्युक्तेति । 'गौरीचरण-  
पङ्कजं गौर्याः पार्वत्याश्चरणमेव पङ्कजं पादपद्मम् । चरणत्वेन  
परिणतं पद्ममित्यर्थः । दुरितमन्तरायं दूरीकरोतु । हरत्वित्यर्थः ।  
अत्रोत्तरपदार्थस्य पङ्कजस्य चरणत्वेन परिणत्या दुरितदूरीकरणोप-  
योगात्परिणामालंकारो नतु रूपकमुपमा वा पङ्कजस्य प्राधान्यायोगा-  
त्साधारणधर्मप्रयोगाच्चेति संक्षेपः । अत्र पङ्कजं स्वर्गज्ञासंबन्धि बो-  
ध्यम् । तस्य जलक्रीडागतदेवीकेशस्थभ्रमरीसंबन्धोपपत्तेः । अन्यस्य  
भ्रमरीमात्रसंबन्धो घटते देवीकेशगतत्वं तु नैव ॥ २ ॥

ग्रन्थप्रतिज्ञा ।

चिकीर्षितं प्रतिजानीते—

अलंकारेषु बालानामवगाहनसिद्ध्ये ।

ललितः क्रियते तेषां लक्ष्यलक्षणसंग्रहः ॥ ३ ॥

अलंकारेष्विति ॥ बालानां बालसदृशानामल्पबुद्धीनामलंकारे-  
षूपमादिषु अवगाहनसिद्ध्ये बुद्धिप्रवेशसिद्ध्यर्थं तेषामलंकाराणां  
ललितः सुन्दरः स्पष्ट इत्यर्थः । लक्ष्यलक्षणयोरुदाहरणस्वरूपकथनयोः  
संग्रहः संक्षेपः क्रियते । इहास्माभिरिति शेषः । अलंकारलक्षणमाह

१ केचित्तु परिणामालंकारस्य स्पष्टप्रतिपत्तये प्रकारान्तरेण विग्रहं कुर्वन्ति ।  
चरणभूतं पङ्कजमिति मध्यमपदलोपी समासः । २ 'विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूहः'  
इत्यमरः । ३ 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे' । उपमेयं पुरुषादि  
व्याघ्रादिभिरुपमानपदैः सह समस्यते । परं साधारणधर्मप्रयोगाभावे । यथा  
पुरुषव्याघ्र इति ।

दण्डी 'काव्यशोभाकरान्धर्मानलंकारान्प्रचक्षते' इति । गुणानां शोभा-  
करत्वेऽपि रसधर्मत्वान्नातिव्याप्तिः । शब्दालंकारास्त्विह न लक्षिताः  
सुगमत्वात् ॥ ३ ॥

उपमालंकारः ।

मुख्यत्वादुपमास्वरूपमाह—

उपमा यत्र सादृश्यलक्ष्मीरुलसति द्वयोः ।

हंसीव कृष्ण ते कीर्तिः स्वर्गङ्गामवगाहते ॥ ४ ॥

उपमेति ॥ यत्र श्लोकादौ द्वयोर्वर्ण्यावर्ण्ययोरर्थयोः सादृश्य-  
लक्ष्मीः साधर्म्यशोभा । शोभाविशिष्टं साधर्म्यमित्यर्थः । पूर्वपदा-  
र्थस्य विशेष्यस्य प्राधान्यान्वये चमत्कारात् । यथा कुमारसंभवे—  
'तथैव तस्थुः फणरत्नशोभा' इत्यत्र । तदुक्तं तर्कशास्त्रे—'सविशेषणे  
हि विधिनिषेधौ सति विशेष्ये बाधे विशेषणमुपसंक्रामतः । सति  
विशेषणे बाधे विशेष्यमुपसंक्रामतः' इति । उल्लसति अधिकं प्रकाशते

१ 'ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः ।

उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः ॥'

इति तल्लक्षणम् । ते च माधुर्यौजःप्रसादाख्याः । तत्र गुणस्थानमाह—

'गलितत्वमिवाह्लादपदव्या हृदये दधत् ।

माधुर्यं नाम शृङ्गारे प्ररोहं गाहते गुणः ॥

आह्लादकत्वं माधुर्यं शृङ्गारे द्रुतिकारणम् ।

करुणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम् ॥'

ओजोलक्षणमाह—

'दीप्त्यात्मा विस्मृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थितेः ।

बीभत्सरौद्ररसयोस्तस्याधिक्यं क्रमेण तु ॥'

यद्वशाज्ज्वलितमिव मनो जायते तदोज इत्यर्थः । प्रसादलक्षणमाह—

'शुष्केन्धनाग्निवत्स्वच्छजलवत्सहसैव यः ।

व्याप्नोत्यन्यत्प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितिः ॥'

स चौजसि शुष्केन्धनाग्निवत्स्थितः । माधुर्यं स्वच्छशर्कराजलवत् यो गुणो-  
ऽन्यद्व्याप्यं चित्तं झटित्वेव रसेन व्याप्नोति स प्रसादः । अयं सर्वेषु रसेष्वभाष्यतया  
सर्वासु रचनासु व्यङ्ग्यतया स्थितः । २ अलक्ष्ये लक्षणगमनमतिव्याप्तिः ।

३ 'गुणदोषौ बुधो गृह्णन्निन्दुक्ष्वेडाविवेश्वरः ।

शिरसा श्लाघते पूर्वं परं कण्ठे नियच्छति ॥'

४ पूर्वपदार्थं विशेष्यं मत्वा तस्यैव प्राधान्येनान्वयस्वीकारे चमत्कारात् ।



तत्रोपमा । यथाशब्दो निदर्शनार्थं सर्वत्र । यथा हे कृष्ण, ते तव  
कीर्तिः हंसीव वरटेव । 'वरटा वरला हंसी' इत्यभिधानात् । स्वर्गङ्गां  
नाकनदीं अवगाहते प्रविशति । तत्र मज्जतां मुखेभ्यः प्रसरणादिति  
भावः । अत्र कृष्णेत्यस्याविद्यमानवत्त्वे हंसीवशब्दात्परस्य ते इत्या-  
देशः । साहचर्यलक्षणमाह रुद्रटः 'अन्योन्यधर्मवत्त्वं तु स्पष्टं साह-  
चर्यमुच्यते' इति । अत्र वर्ण्यमुपमेयं न्यूनगुणमवर्ण्यमुपमानमधिक-  
गुणम् । प्रसिद्धं च तद्धर्मयोरभेदाविवक्षायामिवादयो वाचका इति  
संप्रदायः ॥ ४ ॥

अस्योपमालंकारस्य चत्वारोऽवयवाः । उपमेयं उपमानं धर्मो  
वाचकश्चेति । तेषां निबन्धने पूर्णा, यथासंभवं गम्यत्वे च लुप्तेति  
सिद्धान्तः । तत्र पूर्णा दर्शिता । इदानीं लुप्ताभेदानाह—

वर्ण्योपमानधर्माणामुपमावाचकस्य च ।

एकद्वित्र्यनुपादानैर्भिन्ना लुप्तोपमाष्टधा ॥ ५ ॥

वर्ण्येति ॥ वर्ण्योपमानधर्माणां उपमेयोपमानसाधारणधर्माणां  
उपमावाचकस्य साहचर्यद्योतकस्य इवादेर्वाचकस्य तुल्यादेर्वा चतुर्णां  
मध्ये । निर्धारणे षष्ठी । एकद्वित्र्यनुपादानैः । एकश्च द्वौ च त्रयश्च एक-  
द्वित्रयः तेषां अनुपादानैर्लोपैरष्टधा भिन्ना लुप्तोपमा भवति । लुप्तावयवा  
उपमा लुप्तोपमेति मध्यमपदलोपोऽत्र द्रष्टव्यः । एकादीनां विषयभे-  
देऽपि साहित्यविवक्षायां द्वन्द्वः । बहुव्रीहौ तु एकद्वित्रा इति स्यादिति  
संक्षेपः ॥ ५ ॥

उदाहरणान्याह—

तडिद्गौरीन्दुतुल्यास्या कर्पूरन्ती दृशोर्मम ।

कान्त्या स्मरवधूयन्ती दृष्टा तन्वी रहो मया ॥ ६ ॥

तडिद्गौरीति ॥ तडिदिव गौरी गौरवर्णा । अत्र समासे वाच-  
कलोपः 'उपमानानि सामान्यवचनैः' इति समासविधायकसूत्रमूलः ।  
इन्दुतुल्यास्या इन्दुना तुल्यमास्यं मुखं यस्याः सा तथोक्ता । आह्लाद-  
कत्वेनेति शेषः । अत्र धर्मलोपोऽविवक्षामूलः । 'गम्यमानार्थस्याप्रयोग  
एव लोपोऽभिमतः' इति कैयटोक्तेः । 'अदर्शनं लोपः' इति संज्ञाप्रवृ-  
त्तेश्च । मम दृशोर्नेत्रयोः कर्पूरमिव आचरति कर्पूरति कर्पूरति सा क-

१ 'आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत्' इति । २ तद्विभ्रत्वे सति तद्वतभूयोधर्मसजा-  
तीयभूयोधर्मवत्त्वं साहचर्यम् ।



पूरन्ती । प्रथमायां निषेधेऽपि कचिदङ्गीकारात्किञ्चिन्ताल्लटः शत्रादेशः ।  
अत्राप्याह्लादकत्वेनेति शेषः । तस्य धर्मस्य लोप ऐच्छिकः । वाचकस्य  
किप्रत्ययस्येवशब्दस्य च शास्त्रकृतः । कान्त्या लावण्येन । आत्मान-  
मिति शेषः । स्मरवधूमिव रतिमिव आचरति मन्यते इति स्मरवधू-  
यति स्मरवधूयति सा तथोक्ता । स्वं रतितुल्यं मन्यमानेत्यर्थः ।  
तन्वी कृशाङ्गी मया रहः रहसि । अव्ययमेतत् । दृष्टा । अत्र आत्मा-  
नमित्यस्य गम्यमानत्वादुपमेयलोप ऐच्छिकः । इवशब्दस्य तु शा-  
स्त्रकृतः । कदाचित्काचिदिति शेषः ॥ ६ ॥

यत्तया मेलनं तत्र लाभो मे यश्च तद्रतेः ।

तदेतत्काकतालीयमवितर्कितसंभवम् ॥ ७ ॥

यदिति ॥ तत्र रहसि मे मम तया तन्वया सह यन्मेलनं समागमः  
च परं यः तद्रतेः लाभः तत्पूर्वानुभूतं एतदधुना स्मर्यमाणं  
द्वयमपीति शेषः । अवितर्कितसंभवं अचिन्तितोपलम्भं हेतुभूतं  
विशेषणमेतत्काकतालीयम् । अत्र समासे स्त्रीसमागमोपमा तत्र  
वाचकोपमानलोपः । तद्वितार्थे च तदास्वादोपमा तत्रोपमानमात्र-  
लोपः । तथाहि । काक इव तालमिव काकतालमिति इवार्थे तत्पु-  
रुषः । तत्रेवशब्दस्य 'उक्तार्थानामप्रयोगः' इति शास्त्रसिद्धो लोपः  
'समासाच्च तद्विषयात्' इति ज्ञापकात् । 'मयूरव्यंसकादयश्च' इति  
सूत्रप्राप्तिः 'सह सुपा' इति वा । उपमानलोपस्तु कामिनीकामुकयो-  
र्मेलनं काकतालमित्युक्तेः । पुरुषागमनस्य काकागमनमुपमानं यो-  
षागमनस्य तालफलपतनमुपमानं तयोर्मेलनस्य च काकतालमेलनमु-  
पमानं तस्य गम्यमानत्वाल्लोपः समासार्थानन्तर्गतत्वाद्वैच्छिकः ।  
एवं समासार्थे वाचकोपमानलोपः । तद्वितार्थे तु काकतालमिव  
काकतालीयमिति इवार्थे छप्रत्ययः । तत्र काकतालसमागमजन्य  
आस्वादः कान्तकृतकामिन्युपभोगस्योपमानम् । तस्य गम्यमानत्वा-  
द्वैच्छिकलोपः । छप्रत्ययस्तूपमावाचकः । अवितर्कितसंभवमिति  
उभयत्र साधारणो धर्मः । काकतालशब्दयोर्निजकर्मणोर्लक्षणेति  
संक्षेपः । चतुर्थे चरणे 'अभवत्किं ब्रवीमि ते' इति पाठान्तरकल्पने  
समासार्थे धर्मोपमानवाचकलोपः । तद्वितार्थे च धर्मोपमानलोपः ।  
अवितर्कितसंभवमिति पदलोपात् । पाठान्तरकल्पनाभावे तु मदीयं  
पद्यमुदाहरणीयम् । यथा 'रामस्य पथि राक्षस्याः सङ्गमस्तद्वधश्च यः ।

पुण्यैरजाकृपाणीयं मुनीनामभवद्द्वयम् ॥' इति । एतेऽष्टौ लुप्ताभेदाः  
संभवन्ति । तत्रैको भेदखिलोपपक्षे धर्मोपमानवाचकलुप्तेति १  
द्विलोपपक्षे भेदचतुष्टयम् । धर्मवाचकलुप्ता २ वाचकोपमेयलुप्ता ३  
वाचकोपमानलुप्ता ४ धर्मोपमानलुप्ता चेति ५ । एकलोपपक्षे च त्रयो  
भेदाः । वाचकलुप्ता ६ धर्मलुप्ता ७ उपमानलुप्ता चेति ८ । लुप्तोपमापि  
तदार्थाध्याहारेण पूर्णोपमा भवति । एषैव सर्वालंकारमूलभूता । तदुक्तं  
चित्रमीमांसायाम्- 'उपमैका शैल्लक्ष्मी संप्राप्ता चित्रभूमिकाभेदात् । रञ्ज-  
यति काव्यैरङ्गे नृत्यन्ती तद्विदां चेतः ॥' इति । अन्येऽपि भेदाः काव्य-  
प्रकाशकाव्यादर्शादिषु सन्ति । इह तु विस्तरभयान्न लिखिताः ॥ ७ ॥

उपमानालंकारः ।

उपमानोपमेयत्वं यदेकस्यैव वस्तुनः ।

इन्दुरिन्दुरिव श्रीमानित्यादौ तदनन्वयः ॥ ८ ॥

उपमानेति ॥ एकस्यैव वर्ण्यस्य वस्तुनः यदुपमानोपमेयत्वं उप-  
मानत्वं कल्पितमुपमेयत्वं तु यथार्थमिति बोध्यम् । तदिन्दुश्चन्द्र  
इन्दुरिव चन्द्र इव श्रीमान् सुन्दर इत्यादौ द्रष्टव्यमिति शेषः । अन-  
न्वयः नास्त्यन्वयः प्रकारद्वयसंबन्धो यस्मिन्स तथोक्तः । अत्रोपमे-  
यस्यातुल्यत्वे पर्यवसानम् ॥ ८ ॥

पर्यायेण द्वयोस्तच्चेदुपमेयोपमा मता ।

धर्मोऽर्थ इव पूर्णश्रीरर्थो धर्म इव त्वयि ॥ ९ ॥

पर्यायेति ॥ द्वयोर्वर्ण्यावर्ण्ययोः पर्यायेण परिक्रमेण तत्तु उप-  
मानोपमेयत्वं चेत्तर्हि उपमेयोपमा मता । उपमेयाभ्यां उपमा उप-  
मेयोपमा इति व्युत्पत्तेः । कविभिरिति शेषः । परस्परतुल्यत्वेन  
इतरसादृश्यव्यवच्छेदः फलमस्याः । हे राजन्, त्वयि धर्मः सुकृतं

१ विश्वामित्रादीनाम् । २ नर्तकी । ३ भिन्नभिन्नदेशान् । ४ रङ्गमण्डपे ।

५ 'गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः ।

रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव ॥' इति ।

६ पूर्वोदाहरणे श्रीमत्त्वस्य धर्मस्योपादानमस्ति इह तु गगनादेवैपुल्यादिधर्मस्य  
तन्नास्तीति विशेषः ।

७ 'खमिव जलं जलमिव खं हंस इव चन्द्रश्चन्द्र इव हंसः ।

कुमुदाकारास्तारास्ताराकाराणि कुमुदानि ॥'

पूर्वत्र पूर्णश्रीरिति धर्म उपात्तः, इह निर्मलत्वादिधर्मो नोपात्त इति भेदः ।



अर्थः समृद्धिरिव पूर्णश्रीः संपूर्णशोभा अस्तीति शेषः । अर्थश्च धर्म इव पूर्णश्रीः अस्तीत्यस्य गम्यमानत्वात्प्रायेणाप्रयोगः । 'अस्तिर्भवन्तीपरः प्रथमपुरुषेऽप्रयुज्यमानोऽप्यस्ति' इति भाष्योक्तेः । 'अनुलोमो विलोमश्च क्रमः पर्याय इष्यते' इति शाश्वतः ॥ ९ ॥

प्रतीपालंकारः ।

प्रतीपमुपमानस्योपमेयत्वप्रकल्पनम् ।

त्वल्लोचनसमं पद्मं त्वद्वक्त्रसदृशो विधुः ॥ १० ॥

प्रतीपमिति ॥ उपमानस्य अधिकगुणस्य उपमेयत्वप्रकल्पनं न्यूनगुणत्ववर्णनं प्रतीपम् । प्रतिगच्छन्ति आपो यस्मिन्निति प्रतीपं निम्नोन्नतस्थलं तत्सादृश्यादलंकारे लक्षणा । 'ऋक्पूरू-' इत्यादिना समासान्तोऽकारप्रत्ययः । 'द्व्यन्तरूपसर्गेभ्योऽप ईत्' इति ईदादेशः । प्रतीपादयः स्वभावाद्गौणा एवेति प्राञ्चो वृद्धाः । पद्मं कमलं त्वल्लोचनसमं त्वन्नेत्रतुल्यं रुचेति शेषः । अत्र पद्मस्य वर्ण्यत्वनिबन्धना-न्नेत्रस्य च तद्विपरीतत्वकल्पनाच्च लक्षणानुगमः । विधुश्चन्द्रस्त्वद्वक्त्र-सदृशः हे प्रिये, इति संबोधनं कल्प्यम् । चारुत्वद्योतनार्थं पुनर-प्युदाहरणम् ॥ १० ॥

प्रतीपभेदः ।

अन्योपमेयलाभेन वर्ण्यस्यानादरश्च तत् ।

अलं गर्वेण ते वक्त्रकान्त्या चन्द्रोऽपि तादृशः ॥ ११ ॥

अन्येति ॥ अन्योपमेयलाभेन अन्यस्य उपमेयत्वलाभेन वर्ण्यस्य प्रस्तुतस्यानादरश्च तत्प्रतीपम् । उपमानलाभकथनेन स्तुतिः पर्यवसायिनी । हे प्रिये, ते वक्त्रकान्त्या मुखशोभया हेतुना गर्वेणालं न किञ्चित्साध्यम् । 'गम्यमानापि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका'

१ 'यत्त्वन्नेत्रसमानकान्ति सलिले मग्नं तदिन्दीवरं मेघैरन्तरितः प्रिये तव मुखच्छायायानुकारी शशी । येऽपि त्वद्गमनानुसारिगतयस्ते राजहंसा गता-स्त्वत्सादृश्यविनोदमात्रमपि मे दैवेन न क्षम्यते ॥'

अत्र कान्तीत्यादिधर्मोपादानात्पूर्वोदाहरणवैलक्षण्यं बोध्यम् ।

२ 'गर्वमसंभाव्यमिमं लोचनयुगलेन किं वहसि मुग्धे । सन्तीदृशानि दिशि दिशि सरःसु ननु नीलनलिनानि ॥' पूर्वोदाहरणे कान्त्येति समाधानधर्मोपादानमिह तु नेति भेदः ।

इति करणत्वात्तृतीया । अन्यथा चतुर्थी स्यात् । चन्द्रोऽपि तादृश-  
स्त्वद्वक्त्रसदृशः । चन्द्रस्य न्यूनगुणत्वात्प्रतीपम् ॥ ११ ॥

वर्णोपमेयलाभेन तथान्यस्याप्यनादरः ।

कः क्रौर्यदर्पस्ते मृत्यो त्वत्तुल्याः सन्ति हि स्त्रियः ॥ १२ ॥

वर्ण्येति ॥ वर्ण्योपमेयलाभेन वर्ण्यं च तदुपमेयं च वर्ण्योपमेयं  
तस्य लाभेन प्राप्या । भावप्रधाननिर्देशो वा । अन्यस्यानादरोऽपि  
तथा प्रतीपमित्यर्थः । हे मृत्यो, ते तव क्रौर्यदर्पः क्रूरत्वगर्वः कः । प्रश्ने  
कुत्सायां वा किंशब्दः । 'कुत्साप्रश्रवितर्केषु क्षेपे किंशब्द उच्यते'  
इति शाश्वतः । हि यस्मात्स्त्रियः त्वत्तुल्याः त्वदुपमेयभूताः सन्ति ।  
अतो निरुपमत्वगर्वो व्यर्थ इति भावः ॥ १२ ॥

वर्ण्येनान्यस्योपमाया अनिष्पत्तिवचश्च तत् ।

मुधोपवादो मुग्धाक्षि त्वन्मुखाभं किलाम्बुजम् ॥ १३ ॥

वर्ण्येनेति ॥ वर्ण्येन सह अन्यस्य उपमायाः अनिष्पत्तिवचः  
असंभवोक्तिरपि तत्प्रतीपम् । हे मुग्धाक्षि, अम्बुजं त्वन्मुखाभं  
त्वद्वक्त्रसदृशमिति मुधापवादो मिथ्यामिश्रापो नतु साम्यम् । किल  
प्रसिद्धम् ॥ १३ ॥

प्रतीपमुपमानस्य कैमर्थ्यमपि मन्यते ।

दृष्टं चेद्वदनं तस्याः किं पद्मेन किमिन्दुना ॥ १४ ॥

प्रतीपमिति ॥ उपमानस्य कैमर्थ्यं व्यर्थत्वं मन्यते यत्तदपि  
प्रतीपम् । यत्तदोरध्याहारः । चेद्यदि तस्याः वदनं दृष्टं तर्हि पद्मेन  
किं इन्दुना च किम् । न किञ्चित्साध्यमित्यर्थः । क्षेपे किंशब्दः ॥ १४ ॥

१ 'अहमेव गुरुः सुदारुणानामिति हालाहल मा स्म तात दृष्यः ।  
ननु सन्ति भवादृशानि भूयो भुवनेऽस्मिन्वचनानि दुर्जनानाम् ॥'

२ त्वं उपमेयभूतो यासां ताः ।

३ निरूपितत्वं तृतीयार्थः । वर्ण्यनिरूपिता यान्यस्यावर्ण्यस्योपमा तस्या इत्यर्थः ।

४ 'आकर्ण्य सरोजाक्षि वचनीयमिदं भुवि ।

शशाङ्कस्तव वक्त्रेण पामरैरुपमीयते ॥'

५ 'तदोजसस्तद्यशसः स्थिताविमौ वृथेति चित्ते कुरुते यदा यदा ।  
तनोति भानोः परिवेषकैतवात्तदा विधिः कुण्डलनां विधोरपि ॥'



रूपकालंकारः ।

विषय्यभेदताद्रूप्यरञ्जनं विषयस्य यत् ।

रूपकं तन्निधाधिक्यन्यूनत्वानुभयोक्तिभिः ॥ १५ ॥

विषयीति ॥ यद्विषयस्य उपमेयस्य विषय्यभेदताद्रूप्यरञ्जनं विषयिण उपमानस्य अभेदताद्रूप्याभ्यां भेदाभावतद्रूपत्वाभ्यां रञ्जनं रक्तीकरणं तद्रूपकम् । तदाधिक्यन्यूनत्वानुभयोक्तिभिः आधिक्योक्त्या न्यूनत्वोक्त्या अनुभयोक्त्या च त्रिधा भवति । रूपवत्करोति रूपयतीति रूपको लक्षणाविशेषः । रूपयुक्तं करोतीत्यर्थः । सोऽस्त्यस्मिन्निति रूपकमलंकारः । लक्षणाप्रपञ्चस्तु मत्कृते कोविदानन्दे द्रष्टव्यः ॥ १५ ॥

अयं हि धूर्जटिः साक्षाद्येन दग्धाः पुरः क्षणात् ।

अयमास्ते विना शंभुस्तार्तीयिकविलोचनम् ॥ १६ ॥

अयमिति ॥ प्रतिलोमक्रमेणोदाहरणान्याह विवक्षायाः स्वातन्त्र्यात् । 'वक्तुर्विवक्षापूर्विका शब्दार्थप्रतिपत्तिः' इति व्याडिवचनात् । अयं राजा साक्षाद्धूर्जटिः प्रत्यक्षं शिव एव । हिशब्दो निश्चयार्थः । येन क्षणात् पुरः । यद्यपि क्षणेनैवेति वक्तुं युक्तम् 'अपवर्गे तृतीया' इति सूत्रात् । तथापि बुद्धिकल्पितापादानत्वस्वीकारात्पञ्चमी । दग्धाः रिपूणामिति शेषः । अत्र अनुभवाभेदरूपके राजा अयं तार्तीयिकविलोचनं विना तृतीयनेत्रं विना । तृतीयशब्दात्स्वार्थे

१ 'चन्द्रज्योत्स्नाविशदपुलिने सैकतेऽस्मिन्सरयवा

वाद्युतं चिरतरमभूत्सिद्धयूनोः कयोश्चित् ।

एको वक्ति प्रथमनिहतं कैटभं कंसमन्य-

स्तत्त्वं स त्वं कथय भगवन्को हतस्तत्र पूर्वम् ॥'

अयं हीत्युदाहरणेऽभेदारोपहेतुभूतं पुरदाहकत्वरूपं साधर्म्यमुपात्तम् । इह तु जगद्रक्षकत्वादिकं तद्रूप्यमानमिति भेदः ।

२ 'वेधा द्वेधा भ्रमं चक्रे कान्तासु कनकेषु च ।

तासु तेष्वप्यनासक्तः साक्षाद्भगौ नराकृतिः ॥'

अयमास्त इत्युदाहरणे शंभुसादृश्यं गम्यमानमिह त्वनासक्तिरूपं तदुपात्तमिति भेदः ।

३ राजा । ४ 'अपवर्गे तृतीया' । अपवर्गः फलप्राप्तिस्तस्यां बोद्धव्यां कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे तृतीया स्यात् ।

ईककप्रत्ययः । शंभुरास्ते शिवो वर्तते । 'आस उपवेशने' इत्यस्य वृत्त्यर्थत्वं धातूनामनेकार्थत्वात् । न्यूनाभेदरूपकम् ॥ १६ ॥

शंभुर्विश्वमवत्यद्य स्वीकृत्य समदृष्टिताम् ।

अस्यां मुखेन्दुना लब्धे नेत्रानन्दे किमिन्दुना ॥ १७ ॥

शंभुरिति ॥ अद्येदानीम् । 'एषः' इति पाठे वर्णनीयोऽसौ राजा शंभुः समदृष्टितां द्विनेत्रत्वं स्वीकृत्य गृहीत्वा । समदृष्टिना स्वीकारस्तु भाललोचनस्य गोपनेन विवक्षितः । अन्यथा आधिक्यं न सिध्येत् । पूर्वं विषमदृष्टित्वादिति भावः । विश्वमवति जगद्रक्षति नतु संहरतीति भावः । अत्राधिक्यभेदरूपकम् । ताद्रूप्योदाहरणान्याह । अस्याः कामिन्याः मुखेन्दुना वक्त्रचन्द्रेण नेत्रानन्दे लब्धे प्राप्ते सति इन्दुना किं प्रयोजनम् । न किञ्चिदित्यर्थः । अत्रानुभयताद्रूप्यरूपकम् ॥ १७ ॥

साध्वीयमपरा लक्ष्मीरसुधासागरोदिता ।

अयं कलङ्किनश्चन्द्रान्मुखचन्द्रोऽतिरिच्यते ॥ १८ ॥

१ 'त्वय्यागते किमिति वेपत एव सिन्धु-  
स्त्वं सेतुमन्थकृदतः किमसौ बिभेति ।  
द्वीपान्तरेऽपि नहि तेऽस्त्यवशंवदोऽद्य  
त्वां राजपुंगव निषेवत एव लक्ष्मीः ॥'

शंभुर्विश्वमित्यत्र विश्वसंरक्षकत्वं सादृश्यमुपात्तम् । इह तु नेति भेदः ।

२ 'किं पशस्य रुचिं न हन्ति नयनानन्दं विधत्ते न किं  
वृद्धिं वा झषकेतनस्य कुरुते नालोकमात्रेण किम् ।  
वक्त्रेन्दौ तव सत्ययं यदपरः शीतांशुरुज्जृम्भते  
दर्पः स्यादमृतेन चेदिह तदप्यस्त्येव बिम्बाधरे ॥'

अस्या मुखेन्दुनेत्रस्य किमिन्दुनेति पुनरुपादानमात्रं भेदविवक्षाज्ञापकम् । इह त्वपरशब्दस्याप्युपादानमिति विशेषः ।

३ 'अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः ।

अभाललोचनः शंभुर्भगवान्वादरायणः ॥'

४ 'किमसुभिर्गल्पितैर्जड मन्यसे मयि निमज्जतु भीमसुतामनः ।

मम किल श्रुतिमाह तदर्थिकां नलमुखेन्दुपरां विबुधः स्मरः ॥'

अत्र दमयन्तीकृतचन्द्रोपालम्भे प्रसिद्धचन्द्रो न निर्वाणकालिकमनःप्रवेशतात्पर्य-  
विषयः । 'मनश्चन्द्रे लीयते' इति श्रुतेः । किंतु नलमुखचन्द्र एवेति । ततोऽस्या-  
धिक्यप्रतिपादनादधिकताद्रूप्यरूपकम् । रूपकस्य सावयवत्वनिरवयवत्वाभेदप्रपञ्चनं  
तु चित्रमीमांसायां द्रष्टव्यम् ।



साध्वीति ॥ इयं साध्वी पतिव्रता असुधासागरोदिता सुधास-  
मुद्रादनुत्पन्ना अपरा द्वितीया लक्ष्मीरिति न्यूनताद्रूप्यरूपकम् । अयं  
मुखचन्द्रः कलङ्किनश्चन्द्रादतिरिच्यते । निष्कलङ्कत्वादधिको भवती-  
त्यधिकताद्रूप्यरूपकम् ॥ १८ ॥

परिणामालंकारः ।

परिणामः क्रियार्थश्चेद्विषयी विषयात्मना ।

ग्रसन्नेन दृगब्जेन वीक्षते मदिरेक्षणा ॥ १९ ॥

परिणाम इति ॥ विषयी आरोपविषययुक्तश्चन्द्रादिः विषया-  
त्मना विषयो मुखादिः तद्रूपेण । क्रियार्थः क्रियायै इति क्रियार्थः  
क्रियासाधकश्चेत्तर्हि परिणामः । उदाहरणम् । मदिरेक्षणा मादक-  
नेत्रा काचित्प्रसन्नेन दृगब्जेन दृग्भूतं अब्जं दृगब्जं तेन । मध्यम-  
पदलोपी समासः । नतु मयूरव्यंसकादिः । तस्य रूपकविषयत्वात् ।  
वीक्षते पश्यति । कमलं हि स्वयं द्रष्टुमशक्तं नेत्ररूपं भूत्वा पश्यतीति  
परिणामः । अत्र अदृक् दृक् संपद्यते तथाभूतं दृग्भूतमिति प्रथमार्थे  
तत्पुरुषः । एवंच परिणामाभिव्यक्तिर्न तु मयूरव्यंसकादिः । समा-  
सान्तस्य रूपकविषयत्वादिति नव्याः । एवमन्यत्र ॥ १९ ॥

उल्लेखालंकारः ।

बहुभिर्वहुधोल्लेखादेकस्योल्लेख इष्यते ।

स्त्रीभिः कामोऽर्थिभिः स्वर्दुः कालः शत्रुभिरैक्षि सः ॥ २० ॥

बहुभिरिति ॥ एकस्य वस्तुनः बहुभिः कर्तृभिः बहुधा बहुभिः  
प्रकारैः उल्लेखाद्वितर्काद्वेत्तोरुल्लेखनामालंकार इष्यते । उदाहरणम् ।  
स कृष्णः स्त्रीभिः कामः कंदर्परूपः ऐक्षि वितर्कितः । अर्थिभिर्या-  
चकैः स्वर्गद्रुमरूप ऐक्षि । शत्रुभिः कालः मृत्युरूप ऐक्षि । अत्र  
रूपकमपि ज्ञेयम् ॥ २० ॥

१ 'तीर्त्वा भूतेशमौलिस्त्रजममरधुनीमात्मनासौ तृतीय-  
स्तस्यै सौमित्रिमैत्रीमयमुपकृतवानातरं नाविकाय ।  
व्यामग्राह्यस्तनीभिः शबरयुवतिभिः कौतुकोदञ्चदक्षं  
कृच्छ्रादन्वीयमानः क्षणमचलमथो चित्रकूटं प्रतस्थे ॥'  
आतरं मूल्यम् । कौतुकेन उदञ्चती अक्षिणी यस्मिन्कर्मणि यथा तथा ।

२ 'गजत्रातेति वृद्धाभिः श्रीकान्त इति यौवतैः ।  
यथास्थितश्च बालाभिर्दृष्टः शौरिः सकौतुकम् ॥'

एकेन बहुधोलेखेऽप्यसौ विषयभेदतः ।

गुरुर्वचस्यर्जुनोऽयं कीर्तौ भीष्मः शरासने ॥ २१ ॥

एकेनेति ॥ एकेन कर्त्रा एकस्येति शेषः । विषयभेदतः स्थान-  
कभेदात् । बहुधा उल्लेखेऽपि असावुल्लेखो ज्ञेयः । उदाहरणम् । अयं  
राजा वचसि वचनविषये गुरुर्महान्वाचस्पतिश्च । कीर्तौ यशसि  
अर्जुनः शुभ्रः पार्थश्च । शरासने धनुषि भीष्मो भयंकरो गाङ्गे-  
यश्च । अत्र श्लेषो रूपकं च ज्ञेयम् ॥ २१ ॥

स्मृति-भ्रान्ति-संदेहालंकारः ।

स्यात्स्मृतिभ्रान्तिसंदेहैस्तदङ्कालंकृतित्रयम् ।

पङ्कजं पश्यतः कान्तामुखं मे गाहते मनः ॥ २२ ॥

स्यादिति ॥ स्मृतिभ्रान्तिसंदेहैः स्मरणभ्रमसंशयैः करणैस्तद-  
ङ्कालंकृतित्रयं ते अङ्काः यस्य तत्तदङ्कं तद्वाचकशब्दयुक्तनामकं अलंकृ-  
तीनां त्रयं स्यात् । स्मृतिवर्णने स्मृतिमान्, भ्रान्तिवर्णने भ्रान्ति-  
मान् संदेहवर्णने संदेहः । मत्वर्थीयोऽकारप्रत्ययान्तः संदेह इति  
केचित् । प्रथमज्ञानमनुभवः तस्य पुनर्नवीभावः स्मृतिः । मिथ्या-  
ज्ञानं भ्रान्तिः अनुभवभ्रमयोगः संदेहः । उदाहरणम् । पङ्कजं पश्यतः  
मे मनः कान्तामुखं गाहते प्रविशति स्मरतीत्यर्थः ॥ २२ ॥

अयं प्रमत्तमधुपस्त्वन्मुखं वेत्ति पङ्कजम् ।

पङ्कजं वा सुधांशुर्वेत्यस्माकं तु न निर्णयः ॥ २३ ॥

१ 'अकृशं कुचयोः कृशं विलग्ने विपुलं चक्षुषि विस्तृतं नितम्बे ।  
अधरेऽरुणमाविरस्तु चित्ते करुणाशालिकपालिभागधेयम् ॥'  
२ वितर्केऽपि ।

३ 'दिव्यानामपि कृतविस्मयां पुरस्ता-  
दम्भस्तः स्फुरदरविन्दचारुहस्ताम् ।  
उद्दीक्ष्य श्रियमिव कांचिदुत्तरन्ती-  
मस्मार्षींजलनिधिमन्थनस्य शौरिः ॥'

पूर्वत्र स्मृतिमदुदाहरणे सदृशस्यैव स्मृतिरत्र सदृशलक्ष्मीस्मृतिपूर्वकं तत्संब-  
न्धिनो जलनिधिमन्थनस्यापि स्मृतिरिति भेदः ।

४ 'पलाशकुसुमभ्रान्त्या शुकतुण्डे पतत्यलिः ।  
सोऽपि जम्बूफलभ्रान्त्या तमालि धर्तुमिच्छति ॥'

अत्रान्योन्यविषयभ्रान्तिनिबन्धनः पूर्वोदाहरणाद्विशेषः ।

५ 'जीवनग्रहणे नम्रा गृहीत्वा पुनरुन्नताः ।



अयमिति ॥ अयं प्रसक्तमधुपः उन्मत्तध्रमरः । मत्तो मद्यपश्चेति श्लेषः । त्वन्मुखं पङ्कजं वेत्ति । अस्माकं तु पङ्कजं वा सुधांशुर्वेति निर्णयो नास्ति किंतु संदेहद्वयमस्तीत्यर्थः । मधुपस्य तु भ्रान्तिरेव ॥२३॥

शुद्धापहृत्यलंकारः ।

शुद्धापहृतिरन्यस्यारोपार्थो धर्मनिहवः ।

नायं सुधांशुः किं तर्हि व्योमगङ्गासरोरुहम् ॥ २४ ॥

शुद्धेति ॥ अन्यस्याप्रस्तुतस्य आरोपार्थः आरोपहेतुको यो धर्मनिहवः अपलापः । निषेध इति यावत् । शुद्धा केवला अपहृतिरलंकृतिर्भवति । शुद्धत्वं च निहृतस्य परस्मिन्नारोपाभावः । उदाहरणम् । अयं दृश्यमानः सुधांशुः चन्द्रो न । तर्हि किम् । व्योमगङ्गासरोरुहं स्वर्गङ्गापुण्डरीकम् । अत्र सर्वनाम्ना धर्मनिर्देशः ॥ २४ ॥

हेत्वपहृत्यलंकारः ।

स एव युक्तिपूर्वश्चेदुच्यते हेत्वपहृतिः ।

नेन्दुस्तीव्रो न निश्चयः सिन्धोरौर्वोऽयमुत्थितः ॥२५॥

स इति ॥ स धर्मनिहवः युक्तिपूर्वो हेतुयुक्तश्चेत्तर्हि हेत्वपहृतिरुच्यते । हेतुयुक्ता अपहृतिर्हेत्वपहृतिः । उदाहरणम् । दृश्यमानः

किं कनिष्ठाः किमु ज्येष्ठा घटीयन्त्रस्य दुर्जनाः ॥'

पूर्वोदाहृतसंदेहः प्रसिद्धकोटिकः । अयं तु कल्पितकोटिक इति भेदः ।

१ अङ्गं केऽपि शशशङ्किरे जलनिधेः पङ्कं परे मेनिरे

सारङ्गं कतिचिच्च संजगदिरे भूच्छायमैच्छन्परे ।

इन्दौ यहलितेन्द्रनीलशकलश्यामं दरीदृश्यते

तत्सान्द्रं निशि पीतमन्धतमसं कुक्षिस्थमाचक्ष्महे ॥'

नायं सुधांशुरित्यत्र नेतिशब्दोपात्तत्वाच्छब्दः । इह तु परमतत्वोत्कीर्तनेन खानभिमतत्वसूचनादर्थगम्य इत्यर्थः । एकत्रानेकापहृतरूपतयाप्यत्र वैचित्र्यं बोध्यम् । केऽपि कवयः । आचक्ष्महे । वयं त्विति शेषः ।

२ 'मन्थानभूमिधरमूलशिलासहस्र-

संघट्टनव्रणकिणः स्फुरतीन्दुमध्ये ।

छाया मृगः शशक इत्यपि पामरोक्ति-

स्तेषां कथंचिदपि तत्र नहि प्रसक्तिः ॥'

मन्थानश्चासौ भूमिधरश्च तस्य मूलानि तेषां शिलाः तासां सहस्रं तेन संघट्टः तस्य व्रणः तस्य किणः ।

कुव० २

तीव्रः संतापकारी अयमिन्दुर्न । निशि रात्रावर्कोऽपि न स्यात् । उदित इति शेषः । तर्हिः कः । सिन्धोरुत्थित और्वः । 'और्वस्तु वाडवो वडवानलः' इत्यमरः । हरिवंशे उर्वस्य मुनेः क्रोधाग्निः सागरे स्थापित इति प्रसिद्धम् । कालिकापुराणे च कामदाहे हरक्रोधाग्निर्वाडवरूपेण ब्रह्मणा जठरे गृहीतोऽद्यापि समुद्रे रक्षित इति स्थितम् । तन्मध्ये प्रथमपक्षे उर्वाज्जात और्व इति व्युत्पत्तिः ॥ २५ ॥

पर्यस्तापहुल्यलंकारः ।

अन्यत्र तस्यारोपार्थः पर्यस्तापहुतिश्च सः ।

नायं सुधांशुः किं तर्हि सुधांशुः प्रेयसीमुखम् ॥ २६ ॥

अन्यत्रेति ॥ अन्यत्र अन्यवस्तुनि तस्य प्रकृतस्यारोपार्थः यः धर्मनिहवः स पर्यस्तापहुतिः । उदाहरणम् । अयं सुधांशुश्चन्द्रो न तर्हि किं वस्तु सुधांशुरिति प्रश्नः । प्रेयसीमुखं सुधांशुरित्युत्तरम् । चन्द्रे चन्द्रत्वनिहवः प्रियामुखे तदारोपार्थः ॥ २६ ॥

भ्रान्तापहुल्यलङ्कारः ।

भ्रान्तापहुतिरन्यस्य शङ्कायां भ्रान्तिवारणे ।

तापं करोति सोत्कम्पं ज्वरः किं न सखि स्मरः ॥ २७ ॥

१ 'हालाहलो नैव विषं विषं रमा जनाः परं व्यत्ययमत्र मन्वते । निपीय जागर्ति सुखेन तं शिवः स्पृशन्निमां मुह्यति निद्रया हरिः ॥'

विषं रमेत्यत्र किंतु इत्यध्याहारः । परं केवलम् । व्यत्ययं वैपरीत्यम् ।

२ अत्र तापं करोतीति स्मरवृत्तान्ते कथिते तस्य ज्वरसाधारण्यादजुबुद्ध्या सख्या ज्वरः किमिति पृष्ठे, न सखि इति तत्त्वोक्त्या भ्रान्तिवारणं कृतम् ।

यथा वा—

'नागरिक समधिकोन्नतिरिह महिषः कोऽयमुभयतःपुच्छः ।

नहि नहि करिकलभोऽयं शुण्डादण्डोऽयमस्य न तु पुच्छः ॥'

पूर्वोदाहरणे संदेहरूपभ्रान्तिविषयज्वरत्वापह्नवः । ज्वरः किमिति प्रश्नेन तद्विषयसंदेहावगमात् । इह तु महिषत्वनिश्चयरूपभ्रान्तिविषयस्य महिषत्वस्येति ततो भेदः ।

जटा नेयं वेणीकृतकचकलापो न गरलं

गले कस्तूरीयं शिरसि शशिरेखा न कुसुमम् ।



भ्रान्तेति ॥ अन्यस्य शङ्कायां सत्यां प्रस्तुतेन भ्रान्तिवारणे  
कृते सति भ्रान्तापहृतिः । उदाहरणम् । हे सखि, सोत्कम्पं तापं  
कः करोति इति श्रुत्वा ज्वरः किमिति पृष्ठे हे सखि, ज्वरो न किंतु  
स्मर इति सत्यमुत्तरं ज्वरत्वस्य निहवो भ्रान्तिवारणार्थः ॥ २७ ॥

कैतवापहृत्यलंकारः ।

कैतवापहृतिर्व्यक्तौ व्याजाद्यैर्निहृतैः पदैः ।

निर्यान्ति स्मरनाराचाः कान्तादृक्पातकैतवात् ॥ २८ ॥

कैतवेति ॥ व्याजाद्यैः पदैर्निहृतेर्व्यक्तौ सत्यां कैतवापहृतिः ।  
उदाहरणम् । कान्तादृक्पातकैतवात् कामिनीकटाक्षमिषात् स्मरना-  
राचाः कामबाणाः निर्यान्ति कटाक्षत्वं मिषमात्रं, कामबाणत्वं तु  
सत्यमित्यपहवः ॥ २८ ॥

छेकापहृत्यलंकारः ।

छेकापहृतिरन्यस्य शङ्कातस्तथ्यनिहवे ।

प्रजल्पन्मत्पदे लग्नः कान्तः किं न हि नूपुरः ॥ २९ ॥

इयं भूतिर्नीळे प्रियविरहजन्मा धवलिमा

पुरारातिभ्रान्त्या कुसुमशर किं मां प्रहरसि ॥'

दण्डी त्वत्र तत्त्वाख्यानोपमेत्युपमाभेदं मेने । यदाह—

‘न पद्मं मुखमेवेदं न भृङ्गौ चक्षुषी इमे ।

इति विस्पष्टसादृश्यात्तत्त्वाख्यानोपमा मता ॥’ इति ।

अत्र कल्पितभ्रान्तिर्जटा नेयमित्यादिनिषेधमात्रोन्नेया पूर्ववत्प्रश्नाभावात् ।  
निषेधस्य प्रसक्तिपूर्वकत्वादिति भावः ।

१ ‘रिक्तेषु वारिकथया विपिनोदरेषु

मध्याह्नजृम्भितमहातपतापतप्ताः ।

स्कन्धान्तरोत्थितदवाग्निशिखाच्छलेन

जिह्वां प्रसार्य तरवो जलमर्थयन्ते ॥’

२ व्याजाद्यैरिति पदोपादानेन विषकपटच्छलच्छद्मकैतवादयो गृह्यन्ते ।

३ ‘सीत्कारं शिक्षयति व्रणयत्यधरं तनोति रोमाञ्चम् ।

नागरिकः किं मिलितो नहि नहि सखि हैमनः पवनः ॥’

प्रजल्पन्नित्युदाहरणे एकस्य वाक्यस्यान्यथा योजनमिह त्वनेकेषामिति भेदः ।

‘पद्मे त्वन्नयने स्मरामि सततं भावो भवत्कुन्तले

नीले मुह्यति किं करोमि महितैः क्रीतोऽसि ते विभ्रमैः ।

छेकेति ॥ अन्यस्य शङ्कातः शङ्कायां सत्याम् । सप्तम्यास्तसिल् ।  
तथ्यनिहवे सति छेकापह्नुतिः छेकस्य चतुरस्यापह्नुतिः । उदाहरणम् ।  
प्रजल्पनसन् मत्पदे लग्न इति नायिकाया उक्तौ कान्तः किमिति  
सख्याः प्रश्नः । कान्तो नहि नैव किंतु नूपुरो मञ्जीरः । 'मञ्जीरो  
नूपुरोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः । यद्यपि जल्पधातुव्यक्तायां वाचि प्रवर्तते  
तथापि धातूनामनेकार्थत्वादुपसर्गयोगाद्वा प्रजल्पन्निति नूपुर-  
विशेषः ॥ २९ ॥

संभावनालंकारः ।

संभावना स्यादुत्प्रेक्षा वस्तुहेतुफलात्मना ।

उक्तानुक्तास्पदाद्यात्र सिद्धासिद्धास्पदे परे ॥ ३० ॥

संभावनेति ॥ वस्तुहेतुफलात्मना वस्तुहेतुफलस्वरूपेण तदन्ये-  
षामिति शेषः । संभावना उत्प्रेक्षा स्यात् । उत् ऊर्ध्वं गता प्रेक्षा  
दृष्टिः प्रज्ञा वा यस्यां सेति व्युत्पत्तेः । वितर्कं कुर्वतो दृष्टिर्हि तथा प्र-  
सिद्धा । वर्णनीयस्य वस्तुनः तदन्यवस्तुस्वरूपेण वितर्कः वस्तुत्प्रेक्षा स्व-  
रूपोत्प्रेक्षा चोच्यते । प्रकृतस्याहेतोर्हेतुत्वेनाफलस्य फलत्वेन च कल्पना  
क्रमेण हेतुत्प्रेक्षा फलोत्प्रेक्षा चोच्येते । हेतुत्प्रेक्षायां तृतीयान्तात्पञ्चम्य-  
न्ताद्वा पर इवादिशब्दः । फलोत्प्रेक्षायां चतुर्थ्यन्तात्तुमन्ताद्वा पर  
इवादिरिति प्रायेण भेदः । इवादित्स्तु इव नूनं किं प्रायः ध्रुवं असंशयं  
किमु वा न ननु खलु खित् आहोखित् उत उताहो शङ्के वेद सत्यं कि-  
यापदं च वितर्कार्थमिति । एषामध्याहारे गम्योत्प्रेक्षा । अध्याहृतपद-  
स्यापि 'युष्मद्युपपदे' इत्यादिज्ञापकादन्वयो युक्तः । तद्भेदानाह । अ-  
त्राद्या वस्तुत्प्रेक्षा उक्तानुक्तास्पदा उक्तविषयाऽनुक्तविषया चेति द्वि-  
विधेत्यर्थः । परे द्वे सिद्धासिद्धास्पदे सिद्धविषये असिद्धविषये चेति  
प्रत्येकं द्विविधे । साधारणधर्मद्योतनं च संभावनामूलम् ॥ ३० ॥

इत्युत्स्वप्नवचो निशम्य सख्या निर्भर्त्सितो राधया

कृष्णस्तत्परमेव तद्व्यपदिशन्कीडाविटः पातु वः ॥'

'वदन्ती जारवृत्तान्तं पत्यौ धूर्ता सखीधिया ।

पतिं बुद्ध्वा सखि ततः प्रबुद्धास्मीत्यपूरयत् ।'

'कुन्तले केशपाशे । जारवृत्तान्तं स्वकामुकवार्ताम् । धूर्ता काचित्कामिनी ।  
सखीधिया सखीभ्रमेण । ततः उक्तवृत्तान्तानन्तरम् । प्रबुद्धा जागरणवती ।  
अपूरयत् पूरितवती ।



वस्तुत्प्रेक्षालंकारः ।

धूमस्तोमं तमः शङ्के कोकीविरहशुष्मणाम् ।

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः ॥ ३१ ॥

उदाहरणम्-धूमेति ॥ तमो ध्वान्तं कोकीविरहशुष्मणां चक्रवाकीविरहाग्नीनाम् । 'चक्रवाके वृके कोकः' इति वैजयन्ती । 'बर्हिः शुष्मा कृष्णवर्त्मा' इत्यमरः । धूमस्तोमं धूमपटलं शङ्के । अत्र तमो विषयः धूमस्तोमो विषयीत्युक्तास्पदा । तमः अङ्गानि लिम्पतीव व्याप्नोतीति शेषः । अत्र तमोव्यापनमध्याहृतविषयः । अङ्गलेपनं विषयीत्यनुक्तास्पदा । श्लोकपूरणार्थं पुनरप्युदाहरणमाह । नभ आकाशं अञ्जनं कज्जलं वर्षतीव तमो व्याप्नोतीति शेषः । ततोऽनुक्तास्पदेयम् । प्रथमोदाहरणे पदार्थोत्प्रेक्षा द्वितीयोदाहरणे वाक्यार्थोत्प्रेक्षेति भेद इत्येके ॥ ३१ ॥

हेतुत्प्रेक्षालंकारः ।

रक्तौ तवाङ्गी मृदुलौ भुवि विक्षेपणाद्भुवम् ।

त्वन्मुखाभेच्छया नूनं पद्मैर्वैरायते शशी ॥ ३२ ॥

१ 'बालेन्दुवक्राण्यविकासभावाद्वभुः पलाशान्यतिलोहितानि ।

सद्यो वसन्तेन समागतानां नखक्षतानीव वनस्थलीनाम् ॥'

अत्र पलाशमुकुलानां वक्रत्वलौहित्यसंबन्धेन निमित्तेन वसन्तनायकसमागतवनस्थलीसंबन्धि सद्यःकृतनखक्षततादात्म्यं संभावना उक्तविषया स्वरूपोत्प्रेक्षा । पूर्वोदाहरणे निमित्तभूतधर्मसंबन्धो गम्यः । इह तूपात्त इति भेदः । नचेवशब्दस्य सादृश्यपरत्वेन प्रसिद्धतरत्वादुपमैवास्तु । लिम्पतीवेत्युदाहरणे लेपनकर्तृरुपमानत्वाहस्य क्रियोपसर्जनत्ववदिह नखक्षतानामन्योपसर्जनत्वस्योपमाबाधकस्याभावात् ।

'पिनष्टीव तरङ्गाग्रैः समुद्रः फेनचन्दनम् ।

तदादाय करैरिन्दुलिम्पतीव दिगङ्गनाः ॥'

अत्र तरङ्गाग्रैः फेनचन्दनस्य प्रेरणं पेष्णतयोत्प्रेक्षते । समुद्रादुत्थितस्य चन्द्रस्य प्रथमं समुद्रपूरे प्रसृतानां कराणां दिक्षु व्यापनं च समुद्रोपात्तफेनचन्दनकृतलेपत्वेनोत्प्रेक्षते ।

२ 'रात्रौ रवेर्दिवा चेन्दोरभावादिव स प्रभुः ।

भूमौ प्रतापयशसी सृष्टवान्सततोदिते ॥'

रात्रौ रवेर्दिवा चन्द्रस्याभावः सद्यपि प्रतापयशःसर्गे न हेतुरिति तस्य तद्भेदुत्प्रेक्षसंभावनासिद्धविषया हेतुत्प्रेक्षा । रक्तावित्युदाहरणे भावरूपो हेतुरिह त्वभावरूप इति भेदः ।

रक्ताविति ॥ हे प्रिये, तव मृदुलौ कोमलावङ्गी चरणौ । 'पद-  
ङ्घ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः । भुवि विक्षेपणान्द्रुवमारोपणात्किं रक्तौ  
स्त इति शेषः । सहजरक्तत्वेनाहेतोरपि विक्षेपणस्य हेतुत्वं कल्पितं  
विक्षेपणं च प्रत्यक्षसिद्धमिति सिद्धविषया हेतूप्रेक्षा । अत्र हेतुत्वा-  
भावोपेतं विक्षेपणं विषयः । हेतुत्वरूपो धर्मो विषयी बोध्यः । किंच  
शशी त्वन्मुखाभेच्छया त्वन्मुखकान्तिलिप्सया नूनं पद्मैः सह वैरा-  
यते वैरं करोति । अत्र चन्द्रस्य कामिनीमुखकान्तिलिप्सा नास्तीत्य-  
सिद्धविषया हेतूप्रेक्षा । इयं कारणोत्प्रेक्षेति वदन्ति । 'हेतुर्ना कारणं  
बीजम्' इत्यमरोक्तेः । अत्र हेतुत्वाभावविशिष्टा कान्तिलिप्सा वि-  
षयः । हेतुत्वरूपो धर्मश्च विषयी ॥ ३२ ॥

फलोत्प्रेक्षालंकारः ।

मध्यः किं कुचयोर्धृत्यै बद्धः कनकदामभिः ।

प्रायोऽब्जं त्वत्पदेनैक्यं प्राप्तुं तोये तपस्यति ॥ ३३ ॥

मध्य इति ॥ मध्यः कामिनीमध्यभागः कुचयोर्धृत्यै किं कनक-

'विवस्वतानायिषतेव मिश्राः स्वगोसहस्रेण समं जनानाम् ।

गावोऽपि नेत्रापरनामधेयास्तेनेदमान्ध्यं खलु नान्धकारैः ॥'

अत्र विवस्वता कृतं किरणैः सह जनलोचनानां नयनमसदेव रात्रावान्ध्यं  
प्रति हेतुत्वेनोत्प्रेक्ष्यत इत्यसिद्धविषया हेतूप्रेक्षा । यथा गोपालेन परकीयाभिर्गो-  
भिर्मिश्राः स्त्रीया गावो नीयन्ते । तथा गोपदाच्यत्वसाजालेन मिश्रिता विवस्वतापि  
नीता इवेत्यर्थः । खलु संभावनायाम् । तेन नयनेन हेतुना इदमान्ध्यं न त्वन्धकारै-  
रित्यन्वयः । अत्र चानायिषतेवेति विषयोत्प्रेक्षणपूर्वकं तस्य हेतुत्वेनोत्प्रेक्षणमिति  
पूर्वस्माद्भेदः । एवं पूर्वत्र इच्छयेति गुणरूपो हेतुस्तु किर्यारूप इत्यपि द्रष्टव्यम् ।

१ 'पूरं विधुर्वर्धयितुं पयोधेः शङ्केयमेणाङ्गमणिं कियन्ति ।

पयांसि दोग्धि प्रियविप्रयोगे सशोककोकीनयने कियन्ति ॥'

अत्र चन्द्रेण कृतं समुद्रस्य बृंहणं सदेव तदा तेन कृतस्य चन्द्रकान्तद्रावणस्य  
कोकाङ्गनावाष्पलावणस्य च फलत्वेनोत्प्रेक्षेति सिद्धविषया फलोत्प्रेक्षा ।

२ 'रथस्थितानां परिवर्तनाय पुरातनानामिव वाहनानाम् ।

उत्पत्तिभूमौ तुरगोत्तमानां दिशि प्रतस्थे रविरुत्तरस्याम् ॥'

रथस्थितानामिति । रवी रथे स्थितानां नियुक्तानां पुरातनानां वाहनानां  
अश्वानां परिवर्तनायेव तुरगोत्तमानां उत्पत्तिभूमावुत्तरस्यां दिशि प्रतस्थ इत्यन्वयः ।  
अत्रोत्तरायणस्याश्वपरिवर्तनफलमसदेव फलत्वेनोत्प्रेक्ष्यत इत्यसिद्धविषया फलो-  
त्प्रेक्षा । प्रायोऽब्जमित्यत्र कोमलत्वस्य गुणस्य फलत्वेनोत्प्रेक्षणमिह तु परिवर्तन-  
क्रियाया इति ततो भेदः ।



दामभिः त्रिवलीरूपैः बद्धोऽस्ति । अत्र प्रत्यक्षसिद्धायाः कुचधृतेः फलत्वेन कल्पना सिद्धविषया फलोत्प्रेक्षा । अत्र फलत्वाभाववती कुचधृतिर्विषयः । फलत्वरूपो धर्मो विषयी । अवजं पद्मं त्वत्पदेन सह ऐक्यं प्राप्तुं प्रायः । अत्रापि रूपकातिशयोक्तिः । तोये जले तपस्यति तपश्चरति । अत्र पद्मस्य प्रियापदसायुज्येच्छा नास्तीत्यसिद्धविषया फलोत्प्रेक्षा इमां कार्योत्प्रेक्षामाहुः । 'कार्यं फलं तथा व्युष्टिः' इति कोशात् । 'उपमा दूरगस्यापि न तु संभावना तथा । रूपके निश्चितारोप उत्प्रेक्षायां त्वनिश्चितः' इति ॥ ३३ ॥

स्वरूपातिशयोक्तिः ।

रूपकातिशयोक्तिः स्यान्निगीर्याध्यवसानतः ।

पश्य नीलोत्पलद्वन्द्वाग्निःसरन्ति शिताः शराः ॥ ३४ ॥

रूपकेति ॥ निगीर्य विषयमिति शेषः । विषयमनिबध्येत्यर्थः ।

अध्यवसानतः आहार्यनिश्चयात् बाधकालीनमिच्छाजन्यं ज्ञानमाहार्यनिश्चयः । विषयरूपेण विषयस्वीकारादित्यर्थः । रूपकातिशयोक्तिर्भवति । रूपकयुक्ताऽतिशयोक्तिरिति मध्यमपदलोपः । उदाहरणम् । नीलोत्पलद्वन्द्वात् नेत्रयुगलात् शिताः तीक्ष्णाः शराः कटाक्षाः निःसरन्ति । हे मित्र, त्वं पश्य । अत्र नीलोत्पलद्वन्द्वशब्देन नेत्रयुगले शरशब्देन कटाक्षेषु च गौणी लक्षणा बोध्या । विशेषस्तु मत्कृते कोविदानन्दे द्रष्टव्यः ॥ ३४ ॥

सापह्वातिशयोक्तिः ।

यद्यपहुतिगर्भत्वं सैव सापह्वा मता ।

त्वंत्सूक्तिषु सुधा राजन्भ्रान्ताः पश्यन्ति तां विधौ ॥ ३५ ॥

यदीति ॥ यदि अपहुतिगर्भत्वं स्यादिति शेषः । तर्हि साप-

१ 'वापी कापि स्फुरति गगने तत्परं सूक्ष्मपद्मा  
सोपानालीमधिगतवती काञ्चनीमैन्द्रनीली ।

अग्रे शैलौ सुकृतिसुगमौ चन्दनच्छन्नदेशौ  
तत्रत्यानां सुलभममृतं संनिधानात्सुधांशोः ॥'

वापी नाभी । सूक्ष्मपद्मा केशलिः । शैलौ स्तनौ ।

२ 'रवितप्तो गजः पद्मात्तद्वह्यान्बाधितुं ध्रुवम् ।

सरो विशति न स्नातुं गजस्नानं हि निष्फलम् ॥'

अत्र गजस्य सरःप्रवेशं प्रति फले स्नाने फलत्वमपहुत्य पद्मबाधने निवेशितम् ।

हवा सैव रूपकातिशयोक्तिर्मता बुधैरिति शेषः । उदाहरणम् । हे राजन्, त्वत्सूक्तिषु सुधा मधुरतारूपास्ति । भ्रान्तास्तां विधौ चन्द्रे पश्यन्ति । अत्र सुधाशब्देन मधुरतायां लक्षणा बोध्या । तस्या-  
श्चन्द्रेऽपह्नवोऽर्थसिद्धः ॥ ३५ ॥

भेदकातिशयोक्तिः ।

भेदकातिशयोक्तिस्तु तस्यैवान्यत्ववर्णनम् ।

अन्यदेवास्य गाम्भीर्यमन्यद्वैर्य महीपतेः ॥ ३६ ॥

भेदकेति ॥ तस्य प्रकृतस्यैव अन्यत्ववर्णनं अन्यतया कथनं तु भेदकातिशयोक्तिः । भेदकस्य लोकोत्तरत्वस्यातिशयकथनात् । उदाहरणम् । अस्य महीपतेः गाम्भीर्यमन्यदेव लोकोत्तरमेव । धैर्यं चान्यदेव ॥ ३६ ॥

संबन्धातिशयोक्तिः ।

संबन्धातिशयोक्तिः स्यादयोगे योगकल्पनम् ।

सौधाग्राणि पुरस्यास्य स्पृशन्ति विधुमण्डलम् ॥ ३७ ॥

संबन्धेति ॥ अयोगे असंबन्धे योगकल्पनं संबन्धातिशयोक्तिः स्यात् । उदाहरणम् । अस्य पुरस्य नगरस्य सौधाग्राणि सौधानां राज-  
गृहाणाम् । 'सौधोऽस्त्री राजसदनम्' इत्यमरः । अग्राणि शिरोभागाः विधुमण्डलं चन्द्रविम्बं स्पृशन्ति ॥ ३७ ॥

योगेऽप्ययोगः संबन्धातिशयोक्तिरितीर्यते ।

त्वयि दातरि राजेन्द्र स्वर्दुमान्नाद्रियामहे ॥ ३८ ॥

योग इति ॥ योगेऽपि संबन्धेऽपि अयोगः असंबन्धकथनमपि

१ 'अन्येयं रूपसंपत्तिरन्या वैदग्ध्यधोरणी ।

नैषा नलिनपत्राक्षी सृष्टिः साधारणी विधेः ॥'

वैदग्ध्यधोरणी । वैदग्ध्यं चातुर्यम् । धोरणी परिपाटी ।

२ 'कतिपयदिवसैः क्षयं प्रयायात्कनकगिरिः कृतवासरावसानः ।

इति मुदमुपयाति चक्रवाकी वितरणशालिनि वीररुद्रदेवे ॥'

अत्र चक्रवाक्याः सूर्यास्तमयकारकमहामेरुक्षयसंभावनाप्रयुक्तसंतोषात्संबन्धो वर्णितः ।

३ अनयोरनवद्याङ्गि स्तनयोर्जृम्भमाणयोः ।

अवकाशो न पर्याप्तस्तव बाहुलतान्तरे ॥

जृम्भमाणयोर्वर्धमानयोः ।



संबन्धातिशयोक्तिरितीयते कथ्यते । उदाहरणम् । हे राजेन्द्र राजन्,  
त्वयि दातरि सति स्वर्दुमान्कल्पवृक्षान्नाद्रियामहे न गणयामः ।  
अत्र कल्पवृक्षादरसंभवेऽपि निःस्पृहत्वद्योतनायानादरोक्तिः ॥ ३८ ॥

अक्रमातिशयोक्तिः ।

अक्रमातिशयोक्तिः स्यात्सहत्वे हेतुकार्ययोः ।

आलिङ्गन्ति समं देव ज्यां शराश्च पराश्च ते ॥ ३९ ॥

अक्रमेति ॥ हेतुकार्ययोर्जनकजन्ययोः सहत्वे सहभावे अक्रमा-  
तिशयोक्तिः स्यात् । सहभावाभिधानेन क्रमरहितत्वात् । उदाहरणम् ।  
हे देव राजन्, 'देवः सूर्ये घने रात्रि' इत्यमरः । ते शराः बाणाः च  
परं पराः शत्रवः । 'परोऽरिपरमात्मनोः' इति विश्वः । समं सहैव ।  
'साकं सार्धं समं सह' इत्यमरः । ज्यां मौर्वी भूमिं च । 'मौर्वी ज्या  
सिञ्जिनी गुणः' इत्यमरः । 'ज्या कुर्वसुमती मही' इति चामरः ।  
आलिङ्गन्ति स्पृशन्ति । शरसंधानकाले शत्रवः पतन्तीत्यर्थः ॥ ३९ ॥

चपलातिशयोक्तिः ।

चपलातिशयोक्तिस्तु कार्ये हेतुप्रसक्तिजे ।

यास्यामीत्युदिते तन्व्या वलयोऽभवदूर्मिका ॥ ४० ॥

चपलेति ॥ कार्ये जन्यवस्तुनि हेतुप्रसक्तिजे कारणप्रसङ्गजाते  
सति । चपलातिशयोक्तिः स्यात् । कारणप्रसङ्गमात्रेण कार्योत्पत्तिवर्ण-  
नाच्चपलत्वम् । उदाहरणम् । तन्व्याः कामिन्याः ऊर्मिका अङ्गुलीभूषणं  
प्रियेण यास्यामीत्युदिते वलयः कङ्कणरूपमभजत् । करस्यातिकृशतो-  
त्पत्तावङ्गुलीभूषणं कङ्कणस्थानीयतां गतमित्यर्थः ॥ ४० ॥

१ मुञ्चति मुञ्चति कोशं भजति च भजति प्रकम्पमरिवर्गः ।

हम्मीरवीरखड्गे त्यजति त्यजति क्षमामाशु ॥

खड्गे कोशं पिधानं मुञ्चति सति अरिसमूहोऽपि कोशं भाण्डारं मुञ्चति ।  
तथा खड्गे प्रकम्पमुल्लासनं भजति सति सः प्रकृष्टं कम्पं भजति । एवं खड्गे  
क्षमां शान्तिं त्यजति सति सोऽपि क्षमां पृथ्वीं त्यजतीत्यर्थः । अत्र खड्गस्य  
कोशत्यागादिकाले एव रिपूणां धनत्यागादि वर्णितम् ।

२ 'यामि न यामीति ध्रुवे वदति पुरस्तादक्षणेन तन्वज्याः ।

गलितानि पुरो वलयान्यपराणि तथैव दलितानि ॥

अत्यन्तातिशयोक्तिः ।

अत्यन्तातिशयोक्तिस्तत्पौर्वापर्यव्यतिक्रमे ।

अग्रे मानो गतः पश्चादनुनीता प्रियेण सा ॥ ४१ ॥

अत्यन्तेति ॥ तत्पौर्वापर्यव्यतिक्रमे तयोः पौर्वापर्यव्यतिक्रमे । कार्यस्य पूर्वत्वे कारणस्य चापरत्वे सतीत्यर्थः । अत्यन्तातिशयोक्तिः असंभाव्यत्वादत्यन्तत्वम् । असंभाव्यवर्णनमपि शीघ्रतातिशयोक्त्या-च्चमत्कारहेतुः । उदाहरणम् । अग्रे आदौ । 'अग्रमाद्ये वने प्राप्ये' इति विश्वः । मानः कोपः गतः 'स्त्रीणामीर्ष्याकृतः कोपो मानोऽन्यासङ्गिनि प्रिये' इति लक्षणात् । ततः सा मानिनी प्रियेण पश्चादनुनीता सान्त्विता ॥ ४१ ॥

तुल्ययोगिता ।

वर्णानामितरेषां वा धर्मैक्यं तुल्ययोगिता ।

संकुचन्ति सरोजानि स्वैरिणीवदनानि च ॥ ४२ ॥

वर्णानामिति ॥ वर्णानां प्रकृतानां इतरेषामप्रस्तुतानां धर्मैक्यमेकधर्मान्वयः तुल्ययोगिता । तुल्या योगिताऽन्वयो यत्रेति व्युत्पत्तेः । उदाहरणम् । सरोजानि च परं स्वैरिणीवदनानि जारस्त्रीमुखानि संकुचन्ति निमीलन्ति । चन्द्रोदये इति शेषः । अत्र प्रस्तुतानां संकोचक्रियारूपैकधर्मान्वयः ॥ ४२ ॥

१ कवीन्द्राणामासन्प्रथमतरमेवाङ्गणभुव-

श्चलद्भङ्गासङ्गाकुलकरिमदामोदमधुराः ।

अमी पश्चात्तेषामुपरि पतिता रुद्रनृपतेः

कटाक्षाः क्षीरोदप्रसरदुखीचीसहचराः ॥'

२ 'नाम्बुजैर्न कमलैरुपमेयं स्वैरिणीजनविलोचनयुग्मम् ।

नोदये दिनकरस्य न चेन्दोः केवले तमसि यस्य विकाशः ॥'

अस्तं याते दिवानाथे निशानाथे महोदयम् ।

उन्मीलन्ति कुमुदन्ति चकोरीनयनानि च ॥' इति काव्यविलासे ।

तथा ।

'संजातपत्रप्रकरान्वितानि समुद्रहन्ति स्फुटपाटलत्वम् ।

विकस्वराण्यर्ककराभिमर्शाद्दिनानि पद्मानि च वृद्धिमीयुः ॥

संजातैः पत्राणां प्रकरैः समूहैरन्वितानि स्फुटा विकसिताः पाटला वृक्षविशेषा येषु तानि तेषां भावस्तत्त्वम् । समुद्रहन्तीति शत्रन्तम् । दधानानीत्यर्थः । पद्मपक्षे तु स्फुटानि विकसितानि च तानि पाटलानि पाटलवर्णानि तेषां भावस्तत्त्व-



त्वदङ्गमार्दवे दृष्टे कस्य चित्ते न भासते ।

मालतीशशभृल्लेखाकदलीनां कठोरता ॥ ४३ ॥

त्वदङ्गेति ॥ हे प्रिये, त्वदङ्गमार्दवे त्वदेहसौकुमार्ये दृष्टे सति कस्य चित्ते मालतीशशभृल्लेखाकदलीनां जातिपुष्पचन्द्रकलारम्भाणां कठोरता कठिनता न भासते । सर्वस्य चित्ते भासत इत्यर्थः । अत्राप्रस्तुतानामुपमानभूतानां काठिन्यगुणरूपैकधर्मान्वयः ॥ ४३ ॥

तुल्ययोगिताभेदः ।

हिताहिते वृत्तितौल्यमपरा तुल्ययोगिता ।

प्रदीयते पराभूतिर्मित्रशात्रवयोस्त्वया ॥ ४४ ॥

हितेति ॥ हिताहिते हितं चाहितं च हिताहितं तस्मिन् । 'सर्वोऽपि द्वन्द्वो विभाषयैकवद्भवति' इत्येकवद्भावः । वृत्तितौल्यं वृत्तेर्व्यवहारस्य तौल्यं तुल्यत्वम् । युवादित्वादण् प्रत्ययः । अपराऽन्या तुल्ययोगिता । उदाहरणम् । हे राजन्, त्वया मित्रशात्रवयोः हिताहितयोः शत्रुरेव शात्रवमित्यत्र प्रज्ञादित्वादण् प्रत्ययः । संप्रदान-संज्ञाभावात् षष्ठी । पराभूतिः पराभवः उत्कृष्टसमृद्धिश्च प्रदीयते । अत्र पराभूतिशब्देऽर्थद्वयस्यैक्यारोपात्तुल्ययोगिता ॥ ४४ ॥

मित्यादि पूर्ववत् । एवमर्कस्य करैः किरणैरभिमर्शनाद्विकस्वराणि भासुराणि दिनानि पद्मानि तु विकासशालीनीत्यर्थः । अत्र ग्रीष्मवर्णनेन तदीयत्वेन प्रस्तुतानां दिनानां पद्मानां चैकक्रियान्वयः । विकस्वराणि विकसनशीलानि ।

१ 'नागेन्द्रहस्तस्त्वचि कर्कशत्वादेकान्तशैल्यात्कदलीविशेषाः ।

लब्ध्वापि लोके परिणाहि रूपं जातास्तदूर्वोरुपमानबाह्याः ॥'

परिणाहि विशालतारूपम् । ऊर्ध्ववर्णनेनाप्रस्तुतानां करिकराणां कदलीनां चैकगुणान्वयः ।

२ पूर्वोदाहरणं स्तुतिपर्यवसायि, इदं तु निन्दापर्यवसायीति भेदः । इयं तुल्ययोगिता च सरस्वतीकण्ठाभरणोक्ता । एतस्या उदाहरणान्तरं च यथा ।

यश्च निम्बं परशुना यश्चैनं मधुसर्पिषा ।

यश्चैनं कटुमाल्याद्यैः सर्वस्य कटुरेव सः ॥'

अत्र परशुना वृश्चति, मधुसर्पिषा सिञ्चति, कटुमाल्याद्यैरर्चयतीत्यध्याहारैर्वाक्यानि पूरणीयानि ।

गुणोत्कृष्टैः समीकृत्य वचोऽन्या तुल्ययोगिता ।

लोकेपालो यमः पाशी श्रीदः शक्रो भवानपि ॥ ४५ ॥

गुणेति ॥ गुणोत्कृष्टैः प्रसिद्धगुणैः समीकृत्य सदशीकृत्य । वचः प्रस्तुतस्येति शेषः । अन्या तुल्ययोगिता । उदाहरणम् । यमो धर्म-राजः पाशी वरुणः श्रीदः कुबेरः शक्रः इन्द्रः भवांस्त्वमपि लोक-कपालः । लोकपालशब्दस्य प्रत्येकमन्वयः । तेन प्रकृतस्य राज्ञो यमादिसमीकरणं बोध्यम् । अत्र लोकपालत्वेन प्रकृताप्रकृतयोस्तु-ल्यत्वं वाच्यार्थः । प्रतापादिगुणोत्कर्षेण तुल्यत्वं तु व्यङ्ग्यार्थ इति विशेषः । दीपके तु व्यङ्ग्यार्थो नास्ति ॥ ४५ ॥

दीपकालंकारः ।

वदन्ति वर्ण्यवर्ण्यानां धर्मैक्यं दीपकं बुधाः ।

मदेन भाति कलभः प्रतापेन महीपतिः ॥ ४६ ॥

वदन्तीति ॥ वर्ण्यवर्ण्यानां प्रकृताप्रकृतानां धर्मैक्यं धर्म-साम्यं बुधाः दीपकं वदन्ति । दीपयतीति दीपकं इति व्युत्पत्तेः । उदाहरणम् । कलभः करिशावः । 'कलभः करिशावकः' इत्यमरः । मदेन दानेन भाति । महीपतिश्च प्रतापेन भाति शोभते । अत्र प्रकृताप्रकृतयोः शोभैकधर्मान्वयः ॥ ४६ ॥

१ 'संगतानि मृगाक्षीणां तडिद्विलसितान्यपि ।

क्षणद्वयं न तिष्ठन्ति घनारब्धान्यपि स्वयम् ॥'

इमां तुल्ययोगितां सिद्धिमिति केचिद्वाजहुः । यदाह जयदेवः ।

'सिद्धिः ख्यातेषु चेन्नाम कीर्त्यते तुल्यतोक्तये ।

युवामेवेह विख्यातौ त्वं बलैर्जलधिर्जलैः ॥'

२ प्रस्तुताप्रस्तुतानामेकधर्मान्वयो दीपकम् । यथा कलभमहीपालयोः प्रस्तुता-ऽप्रस्तुतयोर्भानक्रियान्वयः । अत्रापि क्रियाविशेषणीभूतयोर्विम्बप्रतिविम्बाभावो बोध्यः ।

३ मणिः शाणोल्लीढः समरविजयी हेतिदलितो

मदक्षीणो नागः शरदि सरितः श्यानपुलिनाः ।

कलाशेषश्चन्द्रः सुरतमृदिता बालवनिता

तनिन्ना शोभन्ते गलितविभवाश्चार्थिषु नृपाः ॥'

अत्र प्रस्तुतानां नृपाणामवर्ण्यानां मण्यादीनां शोभैकधर्मान्वयः । पूर्वो-दाहरण आदिदीपकमिह त्वन्तदीपकमिति भेदः ।



आवृत्तिदीपकालंकारः ।

त्रिविधं दीपकावृत्तौ भवेदावृत्तिदीपकम् ।

वर्षत्यम्बुदमालेयं वर्षत्येषा च शर्वरी ॥ ४७ ॥

त्रिविधमिति ॥ दीपकावृत्तौ देहलीदीपकन्यायेनानेकोपकार-  
कस्य पदस्यार्थस्योभयोर्वा आवृत्तौ पुनरभिधाने त्रिविधं त्रिप्रकारमा-  
वृत्तिदीपकं भवेत् । आवृत्तिप्रधानं दीपकमिति व्युत्पत्तेः । उदाहरणम् ।  
इयमम्बुदमाला मेघपङ्क्तिः वर्षति तोयं सिञ्चति । एषा शर्वरी रात्रिश्च  
वर्षति वर्षमिवाचरति । यद्यप्यत्र प्रथमं 'वृषु सेचने' इति धातोर्लटि  
रूपं द्वितीयं च वर्षशब्दस्याचारकिबन्तस्येति पदभेदस्तथापि समानत्वे-  
नाभेदाध्यवसायात्पदावृत्तिः ॥ ४७ ॥

उन्मीलन्ति कदम्बानि स्फुटन्ति कुटजद्रुमाः ।

माद्यन्ति चातकास्तृप्ता माद्यन्ति च शिखावलाः ॥ ४८ ॥

उन्मीलन्तीति ॥ कदम्बानि नीपकुसुमानि उन्मीलन्ति विकसन्ति

‘सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः ।

शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम् ॥’

अत्र प्रस्तुतानामप्रस्तुतानां च युगपद्धर्मान्वयः । शाणोल्लीढो निकषोपलघ-  
र्षितः । हेतिदलितो हेतिभिरायुधैर्दलितो विशीर्णितः, श्यानपुलिनाः श्यानानि शु-  
ष्काणि पुलिनानि जलनिर्मुक्ततटानि यासां ताः । तन्निम्ना तनोः कुशस्य भावस्तन्निमा  
कार्श्यं तेन । गलितविभवाः गलितः संक्रान्तो विभवः समृद्धिर्येषां ते ।

१ ‘उत्कण्ठयति मेघानां माला वर्गं कलापिनाम् ।

यूनां चोत्कण्ठयत्यद्य मानसं मकरध्वजः ॥’

उत्कण्ठयति मेघानां माला पङ्क्तिः कलापिनां मयूराणां वर्गं समूहं उत्क-  
ण्ठयति ऊर्ध्वं कण्ठो यस्य तादृशं करोति । तथा मकरध्वजः कामः यूनां  
तरुणानां मानसमुत्कण्ठयत्युत्सुकं करोतीत्यर्थभेदेऽपि शब्दावृत्तिः ।

२ ‘शमयति जलधरधारा चातकयूनां तृषं चिरोपनताम् ।

क्षपयति च वधूलोचनजलधारा कामिनां प्रवासरुचिम् ॥’

‘वदनेन निर्जितं तव निहीयते चन्द्रबिम्बमम्बुधरे ।

अरविन्दमपि च सुन्दरि निलीयते पाथसां पूरे ॥’

एवं आवृत्तीनां प्रस्तुताप्रस्तुतोभयविषयत्वाभावेऽपि दीपकस्यापत्तिमात्रेण  
दीपकव्यपदेशः ।

‘मील संश्लेषणे’ इति धातोरुपसर्गयोगादर्थभेदः । किञ्च । कुटजद्रुमाः स्फुटन्ति विकसन्ति । लक्षणया तत्पुष्पाणि गृह्यन्ते । अत्र क्रियापद-द्वयस्यार्थमात्रावृत्तिः । चातकाः सारङ्गाख्यपक्षिणः तृप्ताः सन्तः माद्यन्ति हृष्यन्ति । शिखावलाः शिखिनश्च । शिखास्ति येषामिति भत्वर्थीयो बलच् प्रत्ययः । माद्यन्ति ‘मदी हर्षे’ इति धातोर्लटि रूप-द्वयमित्युभयावृत्तिः ॥ ४८ ॥

प्रतिवस्तूपमालंकारः ।

वाक्ययोरेकसामान्ये प्रतिवस्तूपमा मता ।

तापेन भ्राजते सूरः शूरश्चापेन राजते ॥ ४९ ॥

वाक्ययोरिति ॥ वाक्ययोः प्रकृताप्रकृतार्थयोः । एकसामान्ये समान एव सामान्यः एकश्चासौ सामान्यश्चेति कर्मधारयः । एकस्मिन्समानधर्मत्वे सतीत्यर्थः । प्रतिवस्तूपमा मता । प्रतिवस्तु प्रत्यर्थमुपमा यस्यामिति व्युत्पत्तेः । उदाहरणम् । सूरः सूर्यः तापेन दीप्त्या भ्राजते शोभते । शूरस्तु चापेन धनुषा राजते शोभते । अत्र केषांचिदलंकाराणां परस्परं भेदः कुवलयानन्दे दर्शितः संश्लेषेणोच्यते । तुल्ययोगितायां द्वावप्यर्थौ कचिद्वर्णनीयौ । दीपके त्वेको वर्ण्य इतरस्त्ववर्ण्यः । आवृत्तिदीपकं च वर्ण्यविषयमेव । प्रतिवस्तूपमा चोभयविषया । तत्र धर्मस्य द्विरुपादानं दीपके तु न तथेति ॥ ४९ ॥

दृष्टान्तालंकारः ।

चेद्विम्बप्रतिबिम्बत्वं दृष्टान्तस्तदलंकृतिः ।

त्वंमेव कीर्तिमान्राजन्विधुरेव हि कान्तिमान् ॥ ५० ॥

१ ‘तवामृतस्यन्दिनि पादपङ्कजे निवेशितात्मा कथमन्यदिच्छति । स्थितेऽरविन्दे मकरन्दनिर्भरे मधुव्रतो नेशुरसं हि वीक्षते ॥’

अत्र यद्युपमेयवाक्येऽनिच्छा उपमानवाक्ये अवीक्षेति धर्मभेदः प्रतिभाति, तथापि वीक्षणमात्रस्यावर्जनीयस्य प्रतिषेधानर्हत्वादिच्छापूर्वकवीक्षाप्रतिषेधोऽयम-निच्छापर्थवसित एवेति धर्मैक्यमनुसंधेयम् ।

२ ‘देवीं वाचमुपासते हि बहवः सारं तु सारस्वतं जानीते नितरामसौ गुरुकुलक्लिष्टे मुरारिः कविः । अबिधर्लङ्घित एव वानरभटैः किंत्वस्य गम्भीरता-मापातालनिमग्नपीवरतनुर्जानाति मन्थाचलः ॥’



चेदिति ॥ चेद्यदि वाक्यार्थयोरिति शेषः । विम्बप्रतिविम्बत्व-  
माकारप्रत्याकारतुल्यत्वं तत्तर्हि दृष्टान्तो नामालंकृतिर्भवति । शब्द-  
द्वयमजहल्लिङ्गम् । उदाहरणम् । हे राजन्, अत्रेति शेषः । त्वमेव  
कीर्तिमान् यशस्वी त्वत्तुल्यो नान्य इत्यर्थः । तथा विधुरेव कान्तिमान्  
भूरिप्रभावः । विजातीयधर्मयोः साम्यं विम्बप्रतिविम्बभावः । सजा-  
तीयधर्मयोः साम्यं वस्तुप्रतिवस्तुभाव इति विवेकः ॥ ५० ॥

निदर्शनालंकारः ।

वाक्यार्थयोः सदृशयोरैक्यारोपो निदर्शना ।

या दातुः सौम्यता सेयं पूर्णेन्दोरैकलङ्कृता ॥ ५१ ॥

वाक्येति ॥ सदृशयोस्तुल्ययोर्वाक्यार्थयोरनेकपदार्थयोः । 'सु-  
प्तिङन्तचयो वाक्यं क्रिया वा कारकान्विता' इत्यमरः । यत्तज्ज्ञानै-  
क्यारोपः अभेदारोपः निदर्शना निश्चित्य दर्शनं सादृश्यप्रकटनं नि-  
दर्शना । दृशेर्ष्यन्तात् स्त्रियां भावे युच् । उदाहरणम् । या दातुः  
पुंसः सौम्यता सोम इव सोमः स एव सौम्यः तस्य भावः सौम्यता  
अक्रूरता सेयं पूर्णेन्दोः पूर्णचन्द्रस्य अकलङ्कृता निष्कलङ्कृता । इह  
यत्तच्छब्दाभ्यामैक्यारोपः स्पष्टः । यदिति पाठे शक्यं मांसैः क्षुदप-  
नेतुमिति वत् सामान्ये नपुंसकत्वम् ॥ ५१ ॥

‘कामं नृपाः सन्ति सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम् ।

नक्षत्रताराग्रहसंकुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः ॥’

पूर्वोदाहरणे कीर्तिकान्त्योर्विम्बप्रतिविम्बभावप्रयोजकं मनोहारित्वरूपं साद-  
श्यमार्थमिह तु राजज्योतिषोः प्राशस्त्यरूपं तच्छाब्दमिति भेदः ।

१ ‘योऽभीतो वसतौ नाथ भवतः समुपागमः ।

मदीयभवने सोऽयमिन्दोरमृतनिर्झरः ॥’

‘अरण्यरुदितं कृतं शवशरीरमुद्धर्तितं

स्थलेऽन्नमवरोपितं सुचिरमूषरे वर्षितम् ।

श्वपुच्छमवनामृतं वधिरकर्णजापः कृतो

धृतोऽन्धमुखदर्पणो यदबुधो जनः सेवितः ॥’

अत्राबुधजनसेवाया अरण्यरोदनादीनां यत्तज्ज्ञानैक्यारोपः ॥

२ दातृपुरुषसौम्यत्वस्योपमेयवाक्यार्थस्य पूर्णेन्दोरैकलङ्कृत्यस्योपमानवाक्यार्थस्य  
यत्तज्ज्ञानैक्यारोपः ।

पदार्थवृत्तिमप्येके वदन्त्यन्यां निदर्शनाम् ।

त्वन्नेत्रयुगलं धत्ते लीलां नीलाम्बुजन्मनोः ॥ ५२ ॥

पदार्थेति ॥ एके केचित् पदार्थवृत्तिमपि । पदार्थे वृत्तिरैक्यारोपस्थितिर्यस्यां तादृशीमपि अन्यां निदर्शनां वदन्ति । उदाहरणम् । हे प्रिये, त्वन्नेत्रयुगलं नीलाम्बुजन्मनोरिन्दीवरयोर्लीलां शोभां धत्ते तत्सदृशीमित्यर्थः । पूर्वत्र यत्तच्छब्दाभ्यामैक्यारोपः इह तु परकीयत्वेनेति भेदः ॥ ५२ ॥

अपरां बोधनं प्राहुः क्रियया सत्सदर्थयोः ।

नश्येद्राजविरोधीति क्षीणं चन्द्रोदये तमः ॥ ५३ ॥

अपरामिति ॥ प्रकृतस्य क्रियया असत्सदर्थयोः असतोऽनिष्टस्य सतः इष्टस्य चार्थस्य च बोधनं अपरां तृतीयां निदर्शनां प्राहुः । उदाहरणम् । तमो ध्वान्तं चन्द्रोदये सति राजविरोधी चन्द्रद्वेषि चेति श्लिष्टरूपकम् । 'राजा प्रभौ नृपे चन्द्रे यक्षे क्षत्रियशक्रयोः' इति विश्वः । नश्येदिति बोधयत् क्षीणं भवतीत्यनिष्टार्थबोधनमेतत् ॥ ५३ ॥

उदयन्नेव सविता पद्मेष्वर्पयति श्रियम् ।

विर्भावयत्समृद्धीनां फलं सुहृदनुग्रहम् ॥ ५४ ॥

उदयन्निति ॥ सविता भानुरुदयन्नुद्गच्छन् । उत्पूर्वादयतेरात्मनोपदस्यानित्यत्वाल्लटः शत्रादेशः । पद्मेषु श्रियं शोभां अर्पयति

१ 'वियोगे गौडनारीणां यो गण्डतलपाण्डिमा ।

अदृश्यत स खर्जूरीमञ्जरीगर्भरेणुषु ॥'

पूर्वस्मिन्नुदाहरण उपमेय उपमानधर्मारोपः । इह तूपमान उपमेयधर्मारोप इति भेदः ॥

२ अत्र पद्ये नेत्रयुगले नीलाम्बुजगतलीलापदारोपो निदर्शना ।

३ 'उन्नतं पदमवाप्य यो लघुर्हेलयैव स पतेदिति ध्रुवम् ।

शैलशेखरगतः पृषत्कणश्चारुमारुतधुतः पतत्यधः ॥'

४ 'चूडामणिं पदे धत्ते यो देवं रविमागतम् ।

सतां कार्यातिथेयीति बोधयन्गृहमेधिनः ॥'

यथायं पर्वतः समागतं रविं शिरसा संभावयति एवं गृहमेधी समागतं सन्तं पूजया संभावयेदिति ।



निदधाति । किं कुर्वन् । सुहृदनुग्रहं स्वजनोपकारं समृद्धीनां  
तेजोवृद्धीनां फलं फलस्वरूपं विभावयन् बोधयन् सन्नर्पयतीति पूर्व-  
त्रान्वयः । इष्टार्थबोधनमेतत् ॥ ५४ ॥

व्यतिरेकालंकारः ।

व्यतिरेको विशेषश्चेदुपमानोपमेययोः ।

शैला इवोन्नताः सन्तः किं तु प्रकृतिकोमलाः ॥ ५५ ॥

व्यतिरेक इति ॥ उपमानोपमेययोः विशेषः न्यूनाधिकगुणत्वं  
चेद्वर्ण्यते तर्हि व्यतिरेको नामालंकारः । व्यतिरेकशब्दो भावे घ-  
ञन्तः । उदाहरणम् । सन्तः पुरुषाः शैला इव उन्नता उच्चैस्ताराः ।  
किंतु प्रकृतिकोमलाः स्वभावमृदवः । शैलास्तु न तथेति विशेषः ।  
अत्रोपमानोपमेयशब्दोपादानादुपमाविशेषो व्यतिरेक इति सूचितः ।  
तेन न्यूनाधिकरूपकयोर्नातिव्याप्तिः । तत्र विषयविषयिशब्दाभ्यां  
व्यवहारात्किञ्चिन्न्यूनरूपकमधिकरूपकं च व्यतिरेकस्यैव प्रपञ्च  
इत्याहुः ॥ ५५ ॥

सहोक्तिरलंकारः ।

सहोक्तिः सहभावश्चेद्भासते जनरञ्जनः ।

दिगन्तमगमत्तस्य कीर्तिः प्रत्यर्थिभिः सह ॥ ५६ ॥

सहोक्तिरिति ॥ चेद्यदि जनरञ्जनश्चमत्कारकारी सहभावः  
सहभवनं सहैव द्वयोरेकक्रियाकरणमित्यर्थः । भासते तर्हि  
सहोक्तिः स्पष्टम् । उदाहरणम् । तस्य कीर्तिः प्रत्यर्थिभिः सह दि-  
शामन्तमगमत् । शत्रवो दिगन्तमगमन् । कीर्तिरपि तथेति नृपो-

१ 'सुधैव वसुधा सत्यमानन्दयति माननम् ।

महान्तमपि किं त्वेषा संमोहयति संततम् ॥'

अत्रोपमानभूतसुधात उपमेयभूतवसुधायाः संमोहकत्वेनैव विशेष इति भवति  
व्यतिरेकालंकार इति काव्यविलासे ।

२ 'छाया संश्रयते तलं विटपिनां श्रान्तेव पान्थैः समं

मूलं याति सरोजलस्य जलता म्लानेव मीनैः सह ।

आचामत्यहिमांशुदीधितिरपस्तप्तेव लोकैः समं

निद्रागर्भगृहं सह प्रविशति क्लान्तेव कान्ताजनैः ॥'

'अमन्दपुण्यसंदोहसंपादितमनिन्दितम् ।

विना जन्मभृतां जन्म विना सुकृतसंचयम् ॥' इति काव्यविलासे ।

त्कर्षव्यञ्जकत्वाच्चमत्कारः । सह शिष्येणागतो गुरुरित्यादौ नास्ति  
चमत्कारः ॥ ५६ ॥

विनोक्त्यलंकारः ।

विनोक्तिश्चेद्विना किञ्चित्प्रस्तुतं हीनमुच्यते ।

विद्या हृद्यापि साऽवद्या विना विनयसंपदम् ॥ ५७ ॥

विनोक्तिरिति ॥ चेद्यदि किञ्चिद्विना प्रस्तुतं वर्ण्यं हीनमप-  
कृष्टमुच्यते तर्हि विनोक्तिः स्पष्टम् । उदाहरणम् । विद्या हृद्यापि  
हृदयंगमापि हृदयस्य प्रिया हृद्या । 'हृदयस्य हृद्-' इत्यादिना यत्प्रत्यये  
हृदादेशः । विनयसंपदं सौजन्याधिक्यं विना सावद्या सदोषा । 'अ-  
वद्यपण्य-' इत्यादिना गार्हार्थेऽवद्यशब्दो निपातितः । विना शिष्येणा-  
गतो गुरुरित्यादौ हीनत्वानुक्तेर्नालंकारः ॥ ५७ ॥

तच्चेत्किञ्चिद्विना रम्यं विनोक्तिः सापि कथ्यते ।

विना खलैर्विभात्येषा राजेन्द्र भवतः सभा ॥ ५८ ॥

तदिति ॥ चेद्यदि तत्प्रकृतं किञ्चिद्विना रम्यमुत्कृष्टमुच्यते तर्हि  
सापि विनोक्तिः कथ्यते । विधेयप्राधान्यात्स्त्रीलिङ्गनिर्देशः । उदा-  
हरणम् । हे राजेन्द्र, एषा भवतः सभा खलैर्विना विशेषेण विभाति ।  
अभक्ष्यं विना सर्वमश्नातीत्यत्र नालंकारः । रम्यत्वानुक्तेः ॥ ५८ ॥

समासोक्त्यलंकारः ।

समासोक्तिः परिस्फूर्तिः प्रस्तुतेऽप्रस्तुतस्य चेत् ।

अयमैन्द्रीमुखं पश्य रक्तश्रुम्बति चन्द्रमाः ॥ ५९ ॥

१ 'आविर्भूते शशिनि तमसा मुच्यमानेव रात्रि-  
नैशस्यार्चिर्हुतभुज इव च्छिन्नभूयिष्ठधूमा ।

मोहेनान्तर्वैरतनुरियं लक्ष्यते मुक्तकल्पा

गङ्गारोधःपतनकलुषा गृह्णीव प्रसादम् ॥'

२ 'मयि मुकुलितमालतीलतायां स्थितवति यानि दिनानि संगतानि  
अहह विधिविधानतोऽधुनैवं कथमपि तानि पुनर्न वीक्षितानि ॥'

इति काव्यविलासे ।

'व्यावल्गत्कुचभारमाकुलकचं व्यालोलहारावलि

प्रेङ्खत्कुण्डलशोभि गण्डयुगलं प्रखेदि वक्राम्बुजम् ।

शश्वदत्तकरप्रहारमधिकश्वासं रसादेतया

यस्मात्कन्दुक सादरं सुभगया संसेव्यसे यत्कृती ॥'



समासोक्तिरिति ॥ चेद्यदि प्रस्तुते प्रकृतार्थे अप्रस्तुतस्य परि-  
स्फूर्तिः प्रतीतिः स्यात्तर्हि समासोक्तिः । समासेन संक्षेपेण अर्थद्वय-  
स्योक्तिरिति व्युत्पत्तेः । विशेषणमात्रस्यानेकार्थत्वासंक्षेपः । विशेष-  
णस्यापि तथात्वे तु श्लेष एव । उदाहरणम् । अयं पुरोवर्ती चन्द्रमाः  
कामुकश्च रक्तो लोहित आसक्तश्च सन् ऐन्द्री इन्द्रस्येयमैन्द्री प्राची  
परवनिता च तस्याः मुखं पुरोभागं वदनं च चुम्बति स्पृशति मुखे-  
नास्वादयति त्वं पश्य । अत्र रक्तादिपदश्लेषबलेन अप्रस्तुतयोः का-  
मुकपरवणितयोः परिस्फूर्तिरिति लक्षणानुगमः । विस्तरः कुवलयान-  
नन्दे द्रष्टव्यः ॥ ५९ ॥

परिकरालंकारः ।

अलंकारः परिकरः साभिप्राये विशेषणे ।

सुधांशुकलितोत्तंसस्तापं हरतु वः शिवः ॥ ६० ॥

अलंकार इति ॥ विशेषणे साभिप्राये साकूते व्यङ्ग्यार्थसहिते  
सतीत्यर्थः । परिकरो नामालंकारः । अलंकारशब्दस्य सर्वत्र  
प्रतीयमानत्वेऽपि ध्वनित्वनिषेधार्थमुपादानम् । परिकरोति प्रकृतार्थ-  
मुपकरोतीति परिकरः साभिप्रायशब्दः सोऽस्मिन्नस्तीति परिकरः ।  
मत्वर्थीयोऽच् प्रत्ययः । भूषणार्थाभावान्न सुडागमः । उदाहरणम् ।  
सुधांशुकलितोत्तंसः सुधाकरनिबद्धावतंसः शिवो वस्तापं हरतु । अत्र  
विशेषणेन शिवस्य तापहरणसमर्थत्वं गम्यते । अत्र विशेषणस्य  
व्यङ्ग्यार्थगर्भत्वेन प्रकृतोपयोगित्वं काव्यलिङ्गे तु वाच्यार्थस्यैव हेतु-  
त्वमिति तस्मादस्य भेदः । तत्रापि व्यङ्ग्यार्थश्चेदुभयोः संकर इति  
निर्णीतं कुवलयाननन्दे ॥ ६० ॥

परिकराङ्कुरालंकारः ।

साभिप्राये विशेष्ये तु भवेत्परिकराङ्कुरः ।

चैतुर्णां पुरुषार्थानां दाता देवश्चतुर्भुजः ॥ ६१ ॥

१ सुधांशूनां कलितः कृत उत्तंसः शेखरो येन स इति ।

‘उत्तंसः कर्णपूरे स्याच्छेखरे चावतंसवत्’ इति विश्वः ।

२ ‘तव प्रसादात्कुसुमायुधोऽपि सहायमेकं मधुमेव लब्ध्वा ।

कुर्यां हरस्यापि पिनाकपाणे धैर्यच्युतिं के मम धन्विनोऽन्ये ॥’

‘फणीन्द्रस्ते गुणान्वक्तुं लिखितुं हैहयाधिपः ।

द्रष्टुमाखण्डलः शक्तः काहमेव क ते गुणाः ॥’

फणीन्द्र इत्यादिविशेषणदानि सहस्रवदनाद्यभिप्रायगर्भाणि ।

साभिप्राय इति ॥ विशेष्ये वर्णनीयनाम्नि साभिप्राये सति तु परिकराङ्कुरः । परिकरस्य अङ्कुर इति व्युत्पत्तेः । यथा वृक्षस्य अङ्कुरो वृक्षान्नातिरिक्तस्तथायमपि परिकरान्नातिरिक्तः । विशेष्यपदस्यैकत्वेन विस्ताराभावादङ्कुरत्वम् । उदाहरणम् । चतुर्भुजो देवः विष्णुः चतुर्णां पुरुषार्थानां धर्मार्थकाममोक्षाणां दातास्ति । एकैकहस्तेनैकस्य दाने विलम्बो न स्यादिति सद्यो दातृत्वं गम्यते । अत्र चतुर्भुजशब्दस्य 'वैकुण्ठो जलशायनश्चतुर्भुजश्च' इति हलायुधे । 'चक्रपाणिश्चतुर्भुजः' इत्यमरकोशे च विष्णुनामत्वदर्शनात् । देवशब्दार्थं प्रति विशेषणत्वेऽपि न दोषः । अत्र विशेष्यशब्देन नाम्न एव विवक्षितत्वात् । देवशब्दार्थं विनापि प्रयोगयोग्यत्वाच्च । यथाह वामनः । 'विशेषणमात्रप्रयोगो विशेष्यप्रतिपत्तौ सागराम्बरादिवत्' इति । असाधारणविशेषणस्य विशेष्यनामधेयत्वादिति तदभिप्रायः ॥ ६१ ॥

श्लेषालंकारः ।

नानार्थसंश्रयः श्लेषो वर्ण्यावर्ण्योभयास्पदः ।

सर्वदोमाधवः पायात्स योगंगामदीधरत् ॥ ६२ ॥

नानार्थेति ॥ वर्ण्यावर्ण्योभयास्पदः प्रकृताप्रकृतोभयविषयः नानार्थसंश्रयः नानाभिधस्यार्थस्याश्रयणं श्लेषः श्लिष्यतोऽर्थावस्मिन्निति व्युत्पत्तेः । क्रमेणोदाहरणानि । सर्वदः स माधवः विष्णुः मायाः रमायाः धवः पतिः मधोर्गोत्रापत्यमिति वा व्युत्पत्तेः । पायात् रक्षतु । यो विष्णुः अगं मन्दरपर्वतं कूर्मावतारेण, गोवर्धनं वा कृष्णावतारेण, गां भूमिं वराहावतारेण, अदीधरत् दधारेति हरिपक्षे । सर्वदानित्यं स उमाधवः पार्वतीपतिः पायात् । यः गङ्गां नाकनदीं जटायामदीधरदिति हरपक्षे । अयं प्रकृतश्लेषः हरिहरयोरुपास्यत्वेन प्रकृतत्वात् ॥ ६२ ॥

१ 'त्रातः काकोदरो येन द्रोघापि करुणात्मना ।

पूतनामा रणख्यातः समेऽस्तु शरणं प्रभुः ॥'

त्रात इति । येन करुणायुक्तान्तःकरणेन द्रोहकर्तापि अदरो भयशून्यः काकत्वातो रक्षितः नतु हतः स पवित्रनामा रणे लब्धवर्णः ख्यातो विभू रामो मे शरणमस्त्वित्यर्थः । कृष्णपक्षे तु काकोदरः कालियसर्पः, पूतनाया मारणेन ख्यात इति विशेषः । अत्र स्तोतव्यत्वेन प्रकृतयोः श्लेषः ।



अब्जेन त्वन्मुखं तुल्यं हरिणाहितसक्तिना ।

उच्चरद्भूरिकीलालः शुशुभे वाहिनीपतिः ॥ ६३ ॥

अब्जेनेति ॥ त्वन्मुखं हरिणा हितसक्तिना मृगोत्पादितसं-  
गेन अब्जेन चन्द्रेण । ‘अब्जो जैवातुकः सोमः’ इति हैमः । तुल्यं  
सदृशं वर्तते । अथवा हरिणा सूर्येण आहितशक्तिना उत्पादितसा-  
मर्थ्येन । ‘हरिर्वातार्कचन्द्रैणयमोपेन्द्रमरीचिषु’ इति विश्वः । अब्जेन  
जलजेन तुल्यं इत्यप्रकृतश्लेषः । मुखस्य वर्ण्यत्वेन अब्जयोरप्रकृत-  
त्वात् श्लेषालंकारे सकारशकारयोरभेदोपचारः प्रसिद्ध एव । उच्च-  
रद्भूरिकीलालः प्रस्रवद्बहुधुरिरो वाहिनीपतिः भीष्मः शुशुभे इति

१ ‘नीतानामाकुलीभावं लुब्धैर्भूरिशिलीमुखैः ।

सदृशे वनवृद्धानां कमलानां त्वदीक्षणे ॥’

नीतानामिति । दयितां प्रति नायकोक्तिः । तव ईक्षणे नेत्रे कमलानां पद्मानां  
हरिणानां च सदृशे स्त इत्यन्वयः । कीदृशानाम् । वने जले अरण्ये च वृद्धिं  
प्राप्तानां तथा लुब्धैर्लोभशीलैर्भूरिभिः शिलीमुखैर्भ्रमरैराकुलीभावं व्याप्ततां नीता-  
नामिति पद्मपक्षे । हरिणपक्षे तु लुब्धैर्व्याधैः कर्तृभिर्भूरिशिलीमुखैर्बाणैः करण-  
भूतैराकुलीभावं चपलतां नीतानामित्यर्थः । ‘मृगप्रभेदे कमले’ इति विश्वः ।  
अत्रोपमानत्वेनाप्रकृतयोः पद्महरिणयोः श्लेषः ।

‘असावुदयमारूढः कान्तिमान् रक्तमण्डलः ।

राजा हरति लोकस्य हृदयं मृदुलैः करैः ॥’

असाविति । उदयं शैलमभिवृद्धिं च रक्तं रक्तवर्णमनुरक्तं च मण्डलं बिम्बं  
देशाश्च । राजा चन्द्रो नृपश्च । मृदुलैरभिनवैरल्पैश्च । करैः किरणैर्ब्राह्मधनैश्च इत्यर्थः ।  
अत्र राजा हरति लोकस्येति वर्णनप्रकृतस्य प्रत्यप्रोदितचन्द्रस्याप्रकृतस्य नवाभि-  
षिक्तस्य नृपतेः श्लेषः । प्रत्यप्रोदितचन्द्रस्य अभिनवोदितचन्द्रस्येत्यर्थः ।

२ ‘आबद्धकृत्रिमसटाजटिलांसमिति-

रारोपितो मृगपतेः पदवीं यदि श्वा ।

मत्तेभकुम्भतटपाटनलम्पटस्य

नादं करिष्यति कथं हरिणाधिपस्य ॥’

आबद्धाः याः कृत्रिमाः सटाः स्कन्धलोमानि तैर्जटिला व्याप्ता अंसमितिः  
स्कन्धदेशो यस्यैवंभूतः श्वा यदि मृगपतेः सिंहस्य पदवीमारोपितः तथापि मत्ता-  
नामिभानां गजानां कुम्भतटस्य पाटने विदारणे लम्पटस्य व्यसनिनो हरिणा-  
नामधिपस्य नादं सिंहनादं कथं करिष्यतीत्यर्थः । अत्र शुनकस्य निन्दा निन्द्यत्वेन  
प्रस्तुते तत्सरूपे कृत्रिमवेषव्यवहारादिमात्रेण विद्वत्ताभिनयनवति वैधेये पर्यवस्यति ।

प्रकृतार्थः । उच्चरद्भूरिकीलालः प्रस्रबद्बुह्लोदकः । 'कीलालं रुधिराम्भ-  
सोः' इति शाश्वतः । वाहिनीपतिः नदीपतिः । 'नदी सेना च वा-  
हिनी' इति यादवः । शुशुभे इत्यप्रकृतार्थः । अत्र सभङ्गः शब्दश्लेषः ।  
अभङ्गस्त्वर्थश्लेष इति केचित् । अत्र विशेषो मत्कृते कोविदानन्दे  
द्रष्टव्यः ॥ ६३ ॥

अप्रस्तुतप्रशंसालंकारः ।

अप्रस्तुतप्रशंसा स्यात्सा यत्र प्रस्तुताश्रया ।

एकः कृती शकुन्तेषु योऽन्यं शक्रान्न याचते ॥ ६४ ॥

अप्रस्तुतेति ॥ अप्रस्तुतप्रशंसानामालंकारः स्यात् । यत्र सा  
अप्रस्तुतार्थस्य प्रशंसा वर्णना प्रस्तुताश्रया प्रस्तुतमाश्रयतीति प्रस्तु-  
ताश्रया प्रकृतार्थपरा भवति । उदाहरणम् । शकुन्तेषु पक्षिषु ।  
'शकुन्तपक्षिशकुनिशकुन्तशकुनद्विजाः' इत्यमरः । एकः चातक एव  
कृती कृतमनेनेति कृती कृतार्थः । 'इष्टादिभ्यश्च' इतीनिप्रत्ययः । यः  
शक्रादन्यं । 'अन्यारात्-' इत्यादिना अन्यशब्दयोगे पञ्चमी । न  
याचते किंतु शक्रमेव याचते । अत्र याचकेष्वेक एव मनस्वी  
धन्यः यः सार्वभौमादन्यं न याचत इति तुल्ये प्रकृतार्थे पर्यवसा-  
नम् ॥ ६४ ॥

कार्ये निमित्ते सामान्ये विशेषे प्रस्तुते सति ।

तदन्यस्य वचस्तुल्ये तुल्यस्येति च पञ्चधा ॥ ६५ ॥

१ सामान्यनिबन्धना यथा—

'विधाय वैरं सामर्षं नरोऽरौ य उदासते ।

प्रक्षिप्योदर्विषं कक्षे शेरते तेऽभिमारुतम् ॥'

विधयेति । ये नरा मनुष्याः सक्रोधेऽरौ शत्रौ वैरं विधायोदासीना भवन्ति  
ते कक्षे तृण उदर्विषमग्निं निक्षिप्याभिमारुतं पवनाभिमुखं शेरते । निद्रां कुर्व-  
न्तीत्यर्थः । अत्र प्रागेव सामर्षं शिशुपाले रुक्मिणीहरणादिना वैरं दृढीकृतवता  
कृष्णेन तस्मिन्नुदासितुमयुक्तमिति विशेष्यवक्तव्येऽर्थे प्रस्तुते तत्प्रत्यायनार्थं सामा-  
न्यमभिहितम् ।

विशेषनिबन्धना यथा—

'अङ्गाधिरोपितमृगश्चन्द्रमा मृगलाञ्छनः ।

केसरी निष्ठुरक्षिप्तमृगयूथो मृगाधिपः ॥'

अङ्गेति । मृगलाञ्छन इत्युच्यत इति शेषः । निष्ठुरं क्षिप्तानि मृगयूथानि येन



कार्यं इति ॥ कार्ये प्रस्तुते सति तदन्यस्य कारणस्य वचःक-  
थननिमित्ते कारणे प्रस्तुते सति तदन्यस्य कार्यस्य । एवं सामान्ये  
विशेषस्य, विशेषे च सामान्यस्य, तुल्ये च तुल्यस्येत्यसौ पञ्चधा  
भवति । तत्र तुल्योदाहरणं दर्शितम् । अस्य श्लोकस्य प्रक्षिप्तत्वाद्-  
न्यान्युदाहरणानि न सन्ति । ततो नूतनानि कृत्वा बालबोधाय  
प्रदर्श्यन्ते—‘संसारानलतप्तोऽयं हरिं शरणमिच्छति । हरेर्भक्ता हि  
बहवो मुक्ताः संसारबन्धनात् ॥ १ ॥’ अत्र पूर्वार्धे संसारानलतप्तस्य  
तापशान्तिलक्षणमुक्तिरूपकार्ये प्रस्तुते हरिशरणरूपकारणमभिहितं  
ततः कार्यावगतिः । अत्र उत्तरार्धे च मुमुक्षुभिर्हरिभक्तिः सर्वथा  
कर्तव्येति कारणे प्रस्तुते सति भक्तजनमुक्तिरूपकार्यमभिहितं ततः  
कारणावगतिः ॥ १ ॥ ‘अजामिलो दुराचारः स्मृतिमात्रादमुच्यत ।  
धन्यो नारायणं जल्पन्नज्ञानादपि मुक्तिमाक् ॥ २ ॥’ अत्र पूर्वार्धे  
नवविधभक्तिसामान्यमाहात्म्ये प्रस्तुते स्मृतिरूपविशेषमाहात्म्यम-

तादृशः केसरी सिंहो मृगाधिप इत्युच्यत इति शेषः । अत्र कृष्णप्रति बलभद्र-  
वाक्ये मार्दवं दूषणपरं पूर्वप्रस्तावनानुसारेण क्रूर एव ख्यातिभागभवति नतु  
मृदुरिति सामान्ये वक्तव्ये तत्प्रत्यायनार्थमप्रस्तुतो विशेषोऽभिहितः ।

कार्यनिबन्धना यथा—

‘नाथ त्वदङ्घ्रिखधावनतोयलम्बा-

स्तत्कान्तिलेशकणिका जलधिं प्रविष्टाः ।

ता एव तस्य दहनेन घनीभवन्त्यो

नूनं समुद्रनवनीतपदं प्रपन्नाः ॥’

नाथेति । हे नाथ विष्णो, त्वच्चरणनखप्रक्षालनजले गङ्गारूपे लम्बाः तेषां  
नखानां कान्तिलेशकणिकाः समुद्रं प्राप्तास्ता एव च कणिकास्तस्य जलधौर्मेथनेन  
सान्द्रतां प्राप्ता नूनं समुद्रसंवन्धिनवनीतस्य चन्द्रस्य पदं प्राप्ताः । चन्द्ररूपेण परि-  
णता इत्यर्थः । अत्र भगवत्पादाम्बुजक्षालनतोयरूपायां दिव्यसरिति अलक्तकर-  
सादिवल्लभानां तथा सह समुद्रं प्रविष्टानां स्वकान्तिलेशकणिकानां परिणामतया  
संभाव्यमानेन समुद्रनवनीतपदवाच्येन चन्द्रेण कार्येण नखकान्त्युत्कर्षरूपं कारणं  
प्रतीयते ।

कारणनिबन्धना यथा—

‘हृतसारमिवेन्दुमण्डलं दमयन्तीवदनाय वेधसा ।

कृतमध्यविलं विलोक्यते धृतगम्भीरखनी खनीलिम ॥’

अत्राप्राकरणिकेन्दुमण्डलगततयोत्प्रेक्ष्यमाणेन दमयन्तीवदननिर्माणार्थं सारांश-  
हरणेन तत्कार्यरूपो वर्णनीयतया प्रस्तुतो दमयन्तीवदनगतो लोकोत्तरसौन्दर्य  
विशेषः प्रतीयते ।

भिहितं ततः सामान्यावगतिः । उत्तरार्धे च अजामिलो धन्य इति विशेषे वक्तव्ये मुक्तिभाक् धन्य इति सामान्यमभिहितं ततो विशेषावगतिः ॥ २ ॥ 'हंसो धन्यो नदीरन्यास्यक्त्वा गङ्गां य आश्रितः । प्रक्षिप्तकारिकाः प्रोक्ताः पञ्च भेदाः प्रदर्शिताः ॥ ३ ॥' अत्र भक्तो धन्यः यः क्षुद्रफलदा इतरदेवतोपासनास्यक्त्वा मुक्तिफलदां हरिभक्तिमेवाश्रित इति तुल्ये प्रस्तुते तत्तुल्यो वाक्यार्थोऽभिहितस्ततः प्रस्तुतावगतिः ॥ ३ ॥ ६५ ॥

प्रस्तुताङ्कुरालंकारः ।

प्रस्तुतेन प्रस्तुतस्य द्योतने प्रस्तुताङ्कुरः ।

किं भृङ्ग सत्यां मालत्यां केतक्या कण्टकेद्वया ॥ ६६ ॥

प्रस्तुतेनेति ॥ प्रस्तुतेन वाक्यार्थेन प्रस्तुतस्य वाक्यार्थस्य द्योतने कृते सति प्रस्तुताङ्कुरः । व्युत्पत्तिः स्पष्टा । उदाहरणम् । हे भृङ्ग, मालत्यां सत्याम् । 'सुमना मालती जातिः' इत्यमरः । मालती भिन्नेति केचित् । कण्टकेद्वया केतक्या किं प्रयोजनं स्यात् । अत्र वाटिकायां कामुके शृण्वति सति भृङ्गं प्रतीयमुक्तिरित्युभयोः प्रस्तुतत्वाल्लक्षणानुगमः ॥ ६६ ॥

पर्यायोक्तं तु गम्यस्य वचो भङ्ग्यन्तराश्रयम् ।

नमस्तस्मै कृतौ येन मुधा राहुवधूकुचौ ॥ ६७ ॥

पर्यायेति ॥ गम्यस्य व्यङ्ग्यस्य भङ्ग्यन्तराश्रयं भङ्ग्यन्तरं प्रकारान्तरमाश्रयतीति तथाभूतं वचस्तु पर्यायोक्तम् । व्युत्पत्तिः स्पष्टा । पर्यायशब्दः प्रकारान्तरवाची सादृश्यात् । उदाहरणम् । तस्मै नमः अस्तु । येन राहुवधूकुचौ मुधा कृतौ मिथ्या कृतौ । राहुशरीरनाशनेन भोगरहितौ कृतावित्यर्थः । एतेन कृष्णाय नमस्कारो गम्यते । राहुशरीरच्छेत्ता हि स एवेति लक्षणानुगमः ॥ ६७ ॥

१ 'अन्यासु तावदुपमर्दसहासु भृङ्ग  
लोलं विनोदय मनः सुमनोलतासु ।

वालामजातरजसं कलिकामकाले

व्यर्थं कदर्थयसि किं नवमल्लिकायाः ॥'

२ 'लोकं पश्यति यस्याङ्घ्रिः स यस्याङ्घ्रिं न पश्यति ।

ताभ्यामप्यपरिच्छेद्या विद्या विश्वगुरोस्तव ॥'

अत्र गौतमः पतञ्जलिश्च स्वासाधारणरूपाभ्यां गम्यौ रूपान्तराभ्यामभिहितौ ।



पर्यायोक्तालंकारः ।

पर्यायोक्तं तदप्याहुर्यद्वाजेनेष्टसाधनम् ।

यामि चूतलतां द्रष्टुं युवाभ्यामास्यतामिह ॥ ६८ ॥

पर्यायेति ॥ व्याजेन कपटेन परस्य स्वस्य वा यदिष्टसाधनं तदपि पर्यायोक्तमाहुः ॥ तत्रापि प्रकारान्तरकल्पनासत्त्वात् । उदाहरणम् । अहं चूतलतां द्रष्टुं पुष्पिता न वेति निश्चेतुं यामि । युवाभ्यां स्त्रीपुंसाभ्यामिह आस्यतां स्वीयताम् । रहःसंपादनाय दूत्याः कपटोक्तिरियमिति लक्षणानुगमः ॥ ६८ ॥

उक्तिर्व्याजस्तुतिर्निन्दास्तुतिभ्यां स्तुतिनिन्दयोः ।

कैः स्वर्धुनि विवेकस्ते नयसे पापिनो दिवम् ॥ ६९ ॥

उक्तिरिति ॥ निन्दास्तुतिभ्यां निबद्धाभ्यां स्तुतिनिन्दयोर्गम्यमानयोरुक्तिर्व्याजस्तुतिः । व्युत्पत्तिः स्पष्टा । उदाहरणम् । हे स्वर्धुनि गङ्गे । 'वाहिनी तटिनी धुनी' इति शाश्वतः । ते तव को विवेकः । यत् पापिनो दिवं नयसे । अत्र गङ्गाया निन्दाव्याजेन स्तुतिर्गम्यते ॥ ६९ ॥

१ रमणीयेन व्याजेन मिषेण स्वस्य परस्य वा इष्टस्य यत्साधनं संपादनं तदपि पर्यायोक्तम् ।

२ अत्र नायिकां नायकेन संगमय्य चूतलतादर्शनव्याजेन निर्गच्छन्त्या सख्या तत्स्वाच्छन्द्यसंपादनरूपेष्टसाधनं पर्यायोक्तम् ।

‘देहि मत्कन्दुकं राधे परिधाननिगूहितम् ।

इति विस्रंसयन्नीवीं तस्याः कृष्णो मुदेऽस्तु वः ॥’

पूर्वत्र परेष्टसाधनमत्र कन्दुकशोधनार्थं नीवीविस्रंसनव्याजेनेष्टसाधनमिति भेदः । परिधाननिगूहितं परिधानेनाधरवस्त्रेण निगूहितमाच्छादितमित्यर्थः ।

३ निन्दया स्तुतेः स्तुत्या निन्दाया वा अवगमनं व्याजस्तुतिः ।

४ ‘कस्ते शौर्यमदो योद्धुं त्वय्येकं सप्तिमास्थिते ।

सप्तसप्तिसमारूढा भवन्ति परिपन्थिनः ॥’

‘अर्थं दानववैरिणा गिरिजयाप्यर्थं शिवस्याहृतं

देवैर्त्थं जगतीतले स्मरहराभावे समुन्मीलति ।

गङ्गा सागरमम्बरं शशिकला नागाधिपः क्षमातलं

सर्वज्ञत्वमधीश्वरत्वमगमत्त्वां मां च भिक्षाटनम् ॥’

अत्राद्योदाहरणे सप्तसप्तिगतश्लेषमूलनिन्दाव्याजेन स्तुतिर्गम्यते, द्वितीयोदाहरणे सर्वज्ञः सर्वेश्वरोऽसीति राज्ञः स्तुत्या व्याजरूपया मदीयवैदुष्यादि दारिद्र्यादि सर्वज्ञातम् ।

साधु दूति पुनः साधु कर्तव्यं किमतः परम् ।

यन्मदर्थे विलूनासि दन्तैरपि नखैरपि ॥ ७० ॥

साध्विति ॥ हे दूति, साधु सम्यक् । अतः परं किं साधु पुनः कर्तव्यम् । यद्यस्मान्मदर्थे । निमित्ते सप्तमी । दन्तैर्नखैश्च विलूनासि । अपिशब्दद्वयं समप्राधान्यसूचनार्थम् । अत्र कामिनीकृत-स्तुतिव्याजेन तत्पतिसक्तत्वद्योतनेन निन्दा गम्यते ॥ ७० ॥

व्याजनिन्दा ।

निन्दाया निन्दया व्यक्तिर्व्याजनिन्देति गीयते ।

विधे स निन्द्यो यस्ते प्रागेकमेवाहरच्छिरः ॥ ७१ ॥

निन्दाया इति ॥ निन्दया निन्दायाः व्यक्तिः सूचना व्याजनिन्दा इति गीयते । उदाहरणम् । हे विधे हे ब्रह्मन्, स शिवो निन्द्यः । अत्र पर्यायोक्तेन शिवो गृह्यते । यः शिवः ते तव प्राक् पूर्वमेकमेव पञ्चमं शिरोऽहरत् । सर्वाण्यपि नाहरदित्येवकारार्थेन हरनिन्दया दुःखमयप्रपञ्चकर्तृत्वेन स्रष्टुर्निन्दा गम्यते ॥ ७१ ॥

आक्षेपालंकारः ।

आक्षेपः स्वयमुक्तस्य प्रतिषेधो विचारणात् ।

चन्द्र संदर्शयात्मानमथवास्ति प्रियामुखम् ॥ ७२ ॥

आक्षेप इति ॥ स्वयमुक्तस्यार्थस्य विचारणात् स्वयमेव प्रति-

१ साधु दूतीत्युदाहरणे मदर्थे महान्तं क्लेशमनुभूतवत्ससीति व्याजरूपया निन्दया तत् । किन्तु रन्तुमेव गतासि धिक्त्वां दूतिकाधर्मविरुद्धकारिणीमिति निन्दावगम्यते ।

२ अत्र हरनिन्दया विषमविपाकं संसारं प्रवर्तयतो विधेरभिव्यङ्ग्या निन्दा व्याजनिन्दा ।

‘विधिरेव विशेषगर्हणीयः करट त्वं रट कस्तवापराधः ।

सहकारतरौ चकार यस्ते सहवासं सरलेन कोकिलेन ॥’

‘शिखरिणि क्व नु नाम कियच्चिरं किमभिधानमसावकरोत्तपः ।

तरुणि येन तवाधरपाटलं दशति बिम्बफलं शुक्रशावकः ॥’

शिखरिणीति । नायिकां प्रति नायकस्योक्तिः । हे तरुणि, असौ शुक्रवालकः । नाम वितर्कः । क्व नु कस्मिंश्शिखरिणि पर्वते कियत्कालं चिरं किमभिधानं किनामकं तपः अकरोत्, येन हेतुना तवाधरवत्पाटलं रक्तवर्णं बिम्बफलं दशतीत्यन्वयः । अत्र शुक्रशावकस्तुत्या नायिकाधरसौभाग्यातिशयस्तुतिर्व्यज्यते ।



बैध आक्षेपः स्पष्टम् । उदाहरणम् । हे चन्द्र, आत्मानं संदर्शयाऽथवा प्रियामुखमस्त्येव । आह्लादकत्वेन मुखमेव चन्द्रकार्यकारीति चन्द्रानादर आक्षेपः ॥ ७२ ॥

निषेधाभासमाक्षेपं बुधाः केचन मन्वते ।

नाहं दूती तनोस्तापस्तस्याः कालानलोपमः ॥ ७३ ॥

निषेधेति ॥ केचन बुधाः पण्डिताः निषेधाभासं निषेधवद्भासमानं वचः आक्षेपं आक्षेपालंकारं मन्वते । उदाहरणम् । अहं दूती न । मिथ्यावादिनी नेत्यर्थः । तस्यास्तनोः शरीरस्य कालानलोपमः कल्पान्ताग्निसमः । अतिदाहक इत्यर्थः । तापः कामज्वरो वर्तते । तस्मात्सा नोपेक्ष्येति भावः । नायकं प्रति दूतीवचनमिदम् । अत्र नाहं दूतीति निषेधस्य मिथ्यावादित्वे पर्यवसानादाभासत्वम् ॥ ७३ ॥

आक्षेपान्तरम् ।

आक्षेपोऽन्यो विधौ व्यक्ते निषेधे च तिरोहिते ।

गच्छ गच्छसि चेत्कान्त तत्रैव स्याज्जनिर्मम ॥ ७४ ॥

आक्षेप इति ॥ विधौ व्यक्ते प्रकटे सति निषेधे च तिरोहिते गूढे सति अन्यः प्रागुक्तमित्रः आक्षेपः स्यात् । विधिः कर्तव्योपदेशः । निषेधस्तु तद्विपरीतः । उदाहरणम् । हे कान्त, गच्छसि चेत् गच्छ । कामचारानुज्ञायां लोड् । मम जनिर्जन्म तत्रैव तस्मिन्नेव देशे स्यात् भवेत् । संभावनायां लिङ् । अन्ते या मतिः सा गतिरिति न्यायेन त्वद्विरहाक्षमाया मम विरहजन्यमरणानन्तरं त्वत्समागमयोग्ये देशे जन्म भविष्यतीत्यर्थः । मज्जीवनमिच्छसि चेत् मा गच्छेति निषेधो गूढः ॥ ७४ ॥

विरोधाभासालंकारः ।

आभासत्वे विरोधस्य विरोधाभास इष्यते ।

विनापि तन्वि हारेण वक्षोजौ तव हारिणौ ॥ ७५ ॥

१ केचिदलंकारसर्वस्वकारादय इत्यमाहुः—न निषेधमात्रमाक्षेपः किंतु यो निषेधो बाधितः सन्नर्थान्तरपर्यवसितः किंचिद्विशेषमाक्षिपति स आक्षेप इति ।

२ 'न चिरं मम तापाय तव यात्रा भविष्यति ।

यदि यास्यसि यातव्यमलमाशङ्कयापि ते ॥'

अत्रापि न चिरं मम तापायेति स्वमरणसंसूचनेन गमननिषेधो गर्भोक्तः ।

३ आभासत इत्याभासः । विरोधश्चासावाभासश्चेति व्युत्पत्तेः ।

४ अत्र हाररहितावपि हारिणौ हयाविति श्लेषमूलको विरोधाभासः ।

आभासत्वे इति ॥ विरोधस्य आभासत्वे सति विरोधाभासो नामालंकार इष्यते । अस्माभिरिति शेषः ॥ अन्यैस्तु विरोध इति । उदाहरणम् । हे तन्वि, तव वक्षोजौ स्तनौ हारेण एकावल्यादिना विनापि हारिणौ हारवन्ताविति विरोधः । हरतश्चित्तमिति व्युत्पत्त्या-  
र्थान्तरकल्पनेन तत्परिहारादाभासत्वम् । इदमुदाहरणं श्लेषसंकीर्णं प्रकारान्तरेणापि काव्यादर्शे दृश्यते । काव्यप्रकाशे तु जात्यादिभेदाद्दशविधोऽयम् । वस्तुतस्तु श्लेषमूलश्चमत्कारकारीति स एवात्रोक्तः ॥ ७५ ॥

विभावनालंकारः ।

विभावना विनापि स्यात्कारणं कार्यजन्म चेत् ।

अपि लाक्षारसासिक्तं रक्तं त्वच्चरणद्वयम् ॥ ७६ ॥

विभावनेति ॥ कारणं प्रसिद्धकारणोक्तिं विनेत्यर्थः । कार्यजन्म कार्योत्पत्तिरभिधीयते चेत्तर्हि विभावनालंकारः स्यात् । विभाव्यते विचार्यते कारणमस्यामिति व्युत्पत्तेः । बाहुलकादधिकरणे युच् । उदाहरणम् । त्वच्चरणद्वयं लाक्षारसासिक्तमप्यलक्तकाच्छुरितमपि । पाठान्तरे लाक्षारसेनासमन्तात्सिक्तं न भवतीति रक्तमस्ति । स्वभावादेवेति भावः । पूर्वत्र विरोधोक्त्या चमत्कारः । इह तु कारणान्तरोक्त्या चमत्कार इति भेदः । अत्र श्लेषमूलत्वं नास्तीत्यपरो विशेषः ॥ ७६ ॥

१ विभाव्यते कारणान्तरं यस्यामिति व्युत्पत्तेः । कारणभावश्च ।

२ अत्र लाक्षारसासिक्तरूपकारणाभावेऽपि रक्तिमा कथितः । स्वाभाविकत्वेन विरोधपरिहारः । यथा वा—

‘अपीतक्षीबकादम्बमसंमृष्टामलाम्बरम् ।

अप्रसादितशुद्धाम्बु जगदासीन्मनोहरम् ॥’

शरद्वर्णनमेतत् । अपीतेति । अपीताः पानशून्याः क्षीवा मत्ताः कादम्बाः कल-  
हंसा यत्र तथा असंमृष्टं संमार्जनशून्यमलमम्बरमाकाशं यत्रैवमप्रसादितं वल्लगाल-  
नक्तकक्षोदप्रक्षेपादिना यत्प्रसादनं तच्छून्यं सूक्ष्मं लघ्वम्बु यत्रैवंभूतं जगन्मनो-  
हरमासीदित्यन्वयः ।



द्वितीया कार्योत्पत्तिविभावना ।

हेतूनामसमग्रत्वे कार्योत्पत्तिश्च सा मता ।

अखैरतीक्ष्णकठिनैर्जगज्जयति मन्मथः ॥ ७७ ॥

हेतूनामिति ॥ किंच हेतूनां कारणानामसमग्रत्वे अपुष्कलत्वे सत्यपि कार्योत्पत्तिः तद्वर्णनमित्यर्थः । सा विभावना मता । उदाहरणम् । मन्मथः कामः अतीक्ष्णकठिनैः तीक्ष्णानि खङ्गादीनि कठिनानि गदादीनि तद्भिन्नैः पुष्परूपैः कोमलैरखैः जगद्विश्वं जयत्यभिभवति । 'जि अभिभवे' इति धातोर्लट् । 'जि जये' त्वकर्मकः । अत्र अस्त्राणामनेकविधत्वाभावादपुष्कलत्वं तथाविधानामपि विधातृवरेण जगज्जयसाधनत्वमिति विधातृवरोर्जितस्य कामस्य प्रसिद्धास्त्रनिरपेक्षत्वेन सामग्र्यसंपादकत्वाभिधानाच्चमत्कारः । अत्रापि विरोधोक्तौ तात्पर्यं नास्ति ॥ ७७ ॥

तृतीया कार्योत्पत्तिविभावना ।

कार्योत्पत्तिस्तृतीया सा सत्यपि प्रतिबन्धके ।

नरेन्द्रानेव ते राजन्दशत्यसिभुजङ्गमः ॥ ७८ ॥

कार्येति ॥ प्रतिबन्धके बाधकारणे सत्यपि कार्योत्पत्तिः तृतीया पूर्वोक्तप्रकारद्वयभिन्ना सा ज्ञेया । कार्योत्पत्तौ प्रतिबन्धकाभावस्यापि कारणत्वेनाङ्गीकारात् । उदाहरणम् । हे राजन्, ते तव असिः खङ्गः स एव भुजङ्गमः सर्पः नरेन्द्रानेव नृपान् विषवैद्यांश्चेति श्लिष्टरूपकम् । 'नरेन्द्रो वार्तिके राज्ञि विषवैद्येऽपि वाच्यवत्' इति विश्वः । दशति लक्षणया हन्तीत्यर्थः । अत्र विषवैद्यत्वं दशनक्रियायाः प्रतिबन्धकत्वेऽपि सर्पस्य प्रबलत्वाभिव्यक्त्या चमत्कारः ॥ ७८ ॥

१ अत्र जगज्जये साध्ये हेतूनामस्त्राणामसमग्रत्वतीक्ष्णत्वादिगुणवैकल्यम् । यथा वा—

'उद्यानमारुतोद्भूताश्चूतचम्पकरेणवः ।

उदस्ययन्ति पान्थानामस्पृशन्तोऽपि लोचने ॥'

लोचने कर्मभूते उदस्ययन्ति उद्भूताश्चूणि कुर्वन्तीत्यर्थः । अत्र बाष्पोद्गमनहेतूनामसमग्रत्वं स्पर्शनक्रियावैकल्यम् ।

२ स्यादित्यपि पाठः ।

३ 'चित्रं तपति राजेन्द्र प्रतापतपनस्तव ।

अनातपत्रमुत्सृज्य सातपत्रं द्विषद्गणम् ॥'

चित्रमिति । प्रताप एव तपनः सूर्यः । 'तपनः सविता रविः' इत्यमरः । आतपत्रं छत्रं तद्रहितमनातपत्रं आतपत्रेण सहितं सातपत्रम् ।

चतुर्थी विभावना ।

अकारणात्कार्यजन्म चतुर्थी स्याद्विभावना ।

शङ्खानदीणानिनादोऽयमुदेति महदद्भुतम् ॥ ७९ ॥

अकारणादिति ॥ अकारणात् कारणसदृशात् वस्तुनः कार्य-  
जन्म चतुर्थी प्राशुक्तभिन्नप्रकारा विभावना स्यात् । उदाहरणम् ।  
शङ्खात् शङ्खत्वेनाध्यस्तात्कामिनीकण्ठादिति रूपकातिशयोक्तिः ।  
अयं वीणानिनादः मधुरालाप एव । वीणानिनाद इत्यत्रापि रूपका-  
तिशयोक्तिः । उदेतीति महदद्भुतमस्ति । घोरध्वनिकारणस्य शङ्खस्य  
मधुरालापकारणत्वमित्याश्चर्यम् । तत्रापि प्रकीयकार्यकारित्वमिति  
महत्त्वं वीणाशङ्खयोः शब्दकारणत्वेन सादृश्यं नवर्थः । यथाहुः  
शाब्दिकाः 'तत्सादृश्यं तदन्यत्वं तदल्पत्वं विरोधिता । अप्राशस्त्यम-  
भावश्च नवर्थाः षट् प्रकीर्तिताः ॥' इति ॥ ७९ ॥

विभावनाभेदः ।

विरुद्धात्कार्यसंपत्तिर्दृष्टा काचिद्विभावना ।

शीतांशुकिरणास्तन्वीं हन्त संतापयन्ति ताम् ॥ ८० ॥

विरुद्धादिति ॥ विरुद्धात् प्रसिद्धकारणविरुद्धादित्यर्थः । का-  
र्यसंपत्तिः कार्योत्पत्तिः काचिद्विभावना दृष्टा । उदाहरणम् । हन्तेति  
खेदे । शीतांशुकिरणाः ऊष्मांशुविरुद्धा इति गम्यते । तां प्रोषितभ-  
र्तृकां तन्वीं कामिनीं संतापयन्ति । अत्र केषुचिच्छ्लोकेषु पादपूर-  
णार्थं प्रयुक्तान्यधिकान्यपि पदानि सन्ति । न तत्र दोषः शङ्क्यः । प्र-  
कृतसङ्गतत्वात् । एवं चैववाहीत्यादीनामसंगतानामेवाधिकत्वे दोष-

१ 'उदिते कुमारसूर्ये कुवलयमुल्लसति भाति नक्षत्रम् ।

मुकुलीभवन्ति चित्रं परराजकुमारपाणिपद्मानि ॥'

उदित इति । कस्यचिद्राजकुमारस्य प्रतापवर्णनम् । कुमाररूपे सूर्ये उदिते  
सति कोः पृथिव्याः वलयं मण्डलमेव कुवलयं कुमुदमुल्लासं प्राप्नोति । क्षत्रं क्षत्रि-  
यकुलं न भाति, अथ च नक्षत्रं भातीति चित्रम् । तथा परेषां राजकुमाराणां  
पाणिकमलानि मुकुलीभवन्ति संकुचन्ति । अञ्जलिबन्धात्तदाकृतीनि भवन्तीत्यर्थः ।

'तिलपुष्पात्समायाति वायुश्चन्दनसौरभः ।

इन्दीवरयुगाच्चित्रं निःसरन्ति शिलीमुखाः ॥'

२ 'अविवेकि कुचद्वन्द्वं हन्तु नाम जगन्नयम् ।

श्रुतिप्रणयिनोरक्षणोरयुक्तं जनमारणम् ॥'

पूर्वोदाहरणयोः कारणस्य कार्यविरोधित्वं स्वाभाविकम् । इह तु श्रुतिप्रणयित्व-  
रूपगन्तुकगुणप्रयुक्तमिति भेदः ।



स्वीकारात् । एवं कचिन्नयूनपदत्वमपि न दोषः । आकाङ्क्षितपदाध्या-  
हारस्य सकलशास्त्रसंमतत्वाच्छीघ्रप्रतीताध्याहारे तु दोषः ॥ ८० ॥

विभावनालंकारः ।

कार्यात्कारणजन्मापि दृष्टा काचिद्विभावना ।

यशःपयोराशिरभूत्करकल्पतरोस्तव ॥ ८१ ॥

कार्यादिति ॥ कार्यात् कार्यत्वेन प्रसिद्धात् वस्तुनः कारण-  
जन्म कारणत्वेन प्रसिद्धस्योत्पत्तिः काचिद्वैपरीत्येन चमत्कारका-  
रिणी विभावना दृष्टा । उदाहरणम् । हे नृप, तव करकल्पतरोः  
यशःपयोराशिरभूत् । अत्र पयोराशिः कारणं कल्पतरुश्च कार्य-  
मिति प्रसिद्धिः । तद्विपरीतवर्णनात् रूपकसंकीर्णा विभावना । सं-  
कीर्णत्वे दोषो नास्तीत्यग्रे वक्ष्यामः ॥ ८१ ॥

विशेषोक्तिरलंकारः ।

कार्याजनिर्विशेषोक्तिः सति पुष्कलकारणे ।

हृदि स्नेहक्षयो नाभूत्स्मरदीपे ज्वलत्यपि ॥ ८२ ॥

कार्येति ॥ पुष्कलकारणे पूर्णाः कला यस्येति पुष्कलमन्यूनां-  
शम् । पृषोदरादित्वासाधुः । तथाविधे कारणे सत्यपि कार्याजनिः  
कार्यानुत्पत्तेरुक्तिर्विशेषोक्तिः विशेषस्य नवीनप्रकारस्योक्तिरिति व्यु-  
त्पत्तेः । उदाहरणम् । स्मरदीपे अनङ्गदीपके हृदि हृदये । ‘पद्म’  
इत्यादिना हृदयस्य हृदादेशः । यद्वा हृदि मनसि । ‘स्वान्तं हन्मानसं  
मनः’ इत्यमरः । ज्वलति दीप्यमाने सत्यपि स्नेहक्षयः स्नेहः प्रीति-  
स्तैलं चेति श्लिष्टरूपकम् । ‘स्नेहस्तैलादिकरसे द्रव्ये स्याद्द्रव्येऽपि च-  
इति विश्वः । तस्य नाशो माभून्न जातः । दीपज्वलने सत्यपि तैल’  
क्षयो न जात इत्यपिशब्दो विरोधद्योतकः । न चात्र विरोधाभासः  
शङ्क्यः । कार्यकारणविषये तस्यानङ्गीकारात् । नापि विभावना । तस्याः  
कारणाभावप्रधानत्वात् । अस्यास्तु कार्याभावप्रधानत्वमिति ॥ ८२ ॥

१ ‘जाता लता हि शैले जातु लतायां न जायते शैलः ।

संप्रति तद्विपरीतं कनकलतायां गिरिद्वयं जातम् ॥’

२ ‘अनुरागवती संध्या दिवसस्तत्पुरःसरः ।

अहो दैवगतिश्चित्रा तथापि न समागमः ॥’

पूर्वोदाहरणेऽनुक्तनिमित्ता इह दैवगतिवैचित्र्यस्य निमित्तस्योपादानादुक्तनि-  
मित्तेतिभेदः ।

असंभवालंकारः ।

असंभवोऽर्थनिष्पत्तेरसंभाव्यत्ववर्णनम् ।

को वेद गोपशिशुकः शैलमुत्पादयिष्यति ॥ ८३ ॥

असंभव इति ॥ अर्थनिष्पत्तेः प्रकृतार्थसिद्धेः असंभाव्यत्वस्य आश्चर्यत्वस्य वर्णनमसंभवः । उदाहरणम् । गोपशिशुकः नन्दकुमारः । स्वार्थे कः अल्पार्थे वा । शैलं गोवर्धनं उत्पादयिष्यतीति को वेद । आश्चर्यमेतदित्यर्थः । गोपग्रहणं तपोमन्त्राद्यभावसूचनार्थम् ॥ ८३ ॥

असंगत्यलंकारः ।

विरुद्धं भिन्नदेशत्वं कार्यहेत्वोरसंगतिः ।

विषं जलधरैः पीतं मूर्च्छिताः पथिकाङ्गनाः ॥ ८४ ॥

विरुद्धमिति ॥ कार्यहेत्वोः कार्यकारणयोः । ‘लक्षणहेत्वोः’ इति ज्ञापकात् हेतुशब्दस्य परनिपातः । विरुद्धमप्रसिद्धं भिन्नदेशत्वं भिन्नौ देशौ ययोस्तौ भिन्नदेशौ तयोर्भावो भिन्नदेशत्वं भिन्नदेशावस्थानवर्णनमित्यर्थः । असंगतिः । उदाहरणम् । यदा जलधरैर्मैघैर्विषं उदकं गरलं चेति श्लिष्टरूपकम् । ‘विषं तु गरले जले’ इति शाश्वतः । पीतमात्मनि निहितं तदा पथिकाङ्गनाः पान्थस्त्रियो मूर्च्छिताः मोहं प्राप्ताः । ‘मूर्च्छा मोहसमुच्छ्राययोः’ इति धातोः कर्तरि क्तः । अत्र विरुद्धमित्युक्तेर्गृहस्थः क्षेत्रधान्यमुत्पादयतीत्यत्र नासंगतिः ॥ ८४ ॥

१ ‘अयं वारामेको निलय इति रत्नाकर इति

श्रितोऽस्माभिस्तृष्णातरलितमनोभिर्जलनिधिः ।

क एवं जानीते निजकरपुटीकोटरगतं

क्षणादेनं ताम्यत्तिमिमकरमापास्यति मुनिः ॥’

२ ययोः कार्यहेत्वोर्भिन्नदेशत्वं विरुद्धं तयोस्तन्निबध्यमानमसंगत्यलंकारः । यथात्र विषपानमूर्च्छयोर्भिन्नदेशत्वम् ।

‘अहो खलभुजङ्गस्य विपरीतो बधक्रमः ।

अन्यस्य दशति श्रोत्रमन्यः प्राणैर्वियुज्यते ॥’

‘उपकारिमुखेन्दुस्थमन्यदेव वचोमृतम् ।

क्वचित्क्षवति कस्यापि जायते जीवितोदयः ॥’



अन्यत्र करणीयस्य ततोऽन्यत्र कृतिश्च सा ।

अन्यत्कर्तुं प्रवृत्तस्य तद्विरुद्धकृतिस्तथा ॥ ८५ ॥

अन्यत्रेति ॥ अन्यत्र करणीयस्यार्थस्य ततोऽन्यत्र तस्मादन्य-  
स्थले कृतिः करणं साऽसंगतिः । अन्यत् क्रियमाणभिन्नं वस्तु कर्तुं  
प्रवृत्तस्य तद्विरुद्धकृतिः तस्माद्विरुद्धार्थस्य करणं च तथा असंगतिरि-  
त्यपरो भेदः । अत्रैकस्मिन् श्लोके प्रक्रमभङ्गमनादृत्य भेदद्वयं लक्षितं  
उत्तरश्लोके च तदुदाहृतं परंतु प्रथमभेदोदाहरणानन्तरं द्वितीयभे-  
दस्य लक्षणोदाहरणे क्रमेण वक्तुं युक्ते अविलम्बेनार्थबोधे चमत्कारा-  
धिक्यात् ॥ ८५ ॥

अपारिजातां वसुधां चिकीर्षन्द्यां तथाऽकृथाः ।

गोत्रोद्धारप्रवृत्तो हि गोत्रोद्भेदं पुराकरोः ॥ ८६ ॥

अपारिजातामिति ॥ हे भगवन्, वसुधां अपारिजातां अप-  
गतं अरिजातं शत्रुवृन्दं यस्यास्तादृशीं चिकीर्षन् कर्तुमिच्छन् द्यां  
दिवम् । 'सुरलोको द्योदिवौ द्वे स्त्रियाम्' इत्यमरः । तथा अपारिजा-

१ अत्र कृष्णं प्रति शक्रस्य सोपालम्भवचने भुवि चिकीर्षिततया तत्र करणीयं  
अपारिजातत्वं दिवि कृतमित्येकासंगतिः । पुरा गोत्राया उद्दारे प्रवृत्तेन वराहरू-  
पिणा तद्विरुद्धं गोत्राणां दलनं खुरकुट्टनैः कृतमिति द्विविधापि श्लेषोत्थापिता ।

२ 'त्वत्खड्गखण्डितसपत्नविलासिनीनां

भूषा भवन्त्यभिनवा भुवनैकवीर ।

नेत्रेषु कङ्कणमथोरुषु पत्रवल्ली

चोलेन्द्रसिंह तिलकं करपल्लवेषु ॥'

हे भुवनैकवीर, चोलदेशाधिप सिंहसदृश, तव खड्गेन खण्डिता ये सपत्नाः शत्रव-  
स्तद्विलासिनीनामभिनवा अदृष्टपूर्वा भूषा भूषणानि भवन्ति । यथा नेत्रेषु कङ्कणं  
जलकणमेव कङ्कणं वलयं भवतीत्यनुपङ्गः । अथेति समुच्चये । ऊरुषु च पत्रयुक्ता  
वल्ली सैव पत्रिकाश्चर्या करपल्लवेषु तिलयुक्तं कं जलमेव ललाटभूषणमिति श्लोकार्थः ।

'मोहं जगत्रयभुवामपनेतुमेत-

दादाय रूपमखिलेश्वरदेहभाजाम् ।

निःसीमकान्तिरसनीरधिनामुनैव

मोहं प्रवर्धयसि मुग्धविलासिनीनाम् ॥'

मोहमिति । हे अखिलेश्वर, जगत्रयवर्तिनां देहधारिणां मोहमपनेतुमेतद्रूपं  
कृष्णशरीरमादाय मर्यादातिक्रान्तं कान्तिरूपरससमुद्रेणामुनैव रूपेण सुन्दरस्त्रीणां  
मोहं प्रवर्धयसीत्यन्वयः ।

तामकृथाः कृतवान् । पारिजातहरणेन नास्ति पारिजातो यस्यां सा  
तथोक्तामिति श्लिष्टरूपकं द्वितीयम् । उदाहरणम् । गोत्रोद्धारप्रवृत्तः  
गोत्रायाः पृथिव्याः उद्धारं समुद्रादुद्धृत्य स्थापने वराहरूपेण प्रवृत्तस्त्वं  
गोत्रोद्देदं पर्वतोद्देदं क्षित्युद्देदं च इति श्लिष्टरूपकम् । पुरा पूर्वमकरोः ।  
यद्वा कृष्णावतारे गोत्रोद्धारप्रवृत्तः भुवो भारहरणेन स्थापनं प्रवृ-  
त्तोऽपि गोत्रोद्देदं गोवर्धनोद्देदमिति । अथवा गोत्रस्य यदुकुलस्य उ-  
द्धारं विप्रशापनिवर्तनेन संकटादुद्धरणे प्रवृत्तस्त्वं गोत्रोद्देदं कुलो-  
च्छेदमिति विरुद्धकृतिः ॥ ८६ ॥

विषमालंकारः ।

विषमं वर्ण्यते यत्र घटनाऽननुरूपयोः ।

क्वेयं शिरीषमृद्वङ्गी क तादृग्मदनज्वरः ॥ ८७ ॥

विषममिति ॥ यत्र द्वयोरर्थयोरननुरूपयोः सतोरसदृशत्वेन  
विवक्षितयोरित्यर्थः । घटना अनुरूपत्वनिषेधरूपा वर्ण्यते वैलक्षण्य-  
वाचकशब्दप्रयोगेण स्फुटीक्रियते तत्र विषमं समाद्विपरीतं विषम-  
मिति व्युत्पत्तेः । उदाहरणम् । शिरीषमृद्वङ्गी शिरीषकुसुमकोमलश-  
रीरेयं क । स इव दृश्यते इति तादृक् अनिर्वचनीयः । यद्वा स इ-  
वेति तादृक् 'तादृगादौ सूत्रमते कर्मकर्तरि कृत्स्मृतः । महाभाष्ये  
त्विवेत्यर्थे दृग्दृशौ तद्धितौ मतौ ॥' इति वामनः । मदनज्वरः मदन-  
कृतो ज्वरः संतापो मदनज्वर इति मध्यमपदलोपी समासः । क ।  
नोभयं समत्वेन घटत इत्यर्थः । प्रायेणायं कशब्दद्वये सत्येव भवति  
॥ ८७ ॥

विरुद्धकार्यस्योत्पत्तिरपरं विषमं मतम् ।

कीर्तिं प्रसूते धवलां श्यामा तव कृपाणिका ॥ ८८ ॥

विरुद्धेति ॥ विरुद्धकार्यस्य कारणविरोधित्वेन प्रसिद्धस्य का-  
र्यस्य उत्पत्तिर्वर्णनमपरं विषमं मतम् । 'विरुद्धकार्यस्य' इति पाठे-  
प्ययमेवार्थः । विरुद्धं रूपं यस्य तत् । उदाहरणम् । तव श्यामा  
कृपाणिका तरवारिः धवलां शुभ्रां कीर्तिं प्रसूते । अत्रासितायाः कृ-

१ 'अभिलषसि यदीन्दो वक्रलक्ष्मीं मृगाक्ष्याः

पुनरपि सकृदब्धौ मज्ज संक्षालयाङ्गम् ।

सुविमलमथ विम्बं पारिजातप्रसूनैः

सुरभय वद नोचेत्त्वं क तस्या मुखं क ॥'



पाणिकायाः सितत्वेन विरुद्धायाः कीर्तेरुत्पत्तिरुक्तेति लक्षणानुगमः ।  
न चास्य कारणस्यापि विरुद्धत्वाद्विभावनायामन्तर्भावः । यत्र कार-  
णस्य प्रकृतविरुद्धत्वविवक्षा तत्र विभावना । यत्र च कार्यस्य तथा-  
त्वविवक्षा तत्र विषमम् । यत्र चोभयोस्तत्र संकर इति सिद्धान्तात् ।  
वस्तुतस्तु नाशयनाशकभावरूपं विरुद्धत्वं विभावनायां, प्रकारभेदरूपं  
विरुद्धत्वं विषमालंकारे इति भेदः । एवंच विरूपकार्यस्येति पाठः  
साधुः । विभिन्नं भिन्नप्रकारं रूपं यस्येति विरूपं तादृशं च तत्कार्यं  
चेति व्युत्पत्तिः ॥ ८८ ॥

विषमभेदः ।

अनिष्टस्याप्यवाप्तिश्च तदिष्टार्थसमुद्यमात् ।

भक्ष्याशयाहिमञ्जूषां दृष्ट्वाखुस्तेन भक्षितः ॥ ८९ ॥

अनिष्टस्येति ॥ इष्टार्थसमुद्यमात् इष्टायेति इष्टार्थः स चासौ  
समुद्यमस्तस्मात् अनिष्टस्याप्यवाप्तिः । अपिशब्दादिष्टानवाप्तिश्च तद्वि-  
षमम् । उदाहरणम् । आखुर्मूषकः भक्ष्याशया मोदकादितृष्णया  
अहिमञ्जूषां सर्पपेटिकां दृष्ट्वा विलोक्य प्रविष्ट इति शेषः । ‘दृष्ट्वा’  
इति पाठे विदार्येत्यर्थः । केचित्तु द्रष्टेति तृन्प्रत्ययान्तं तद्योगे मञ्जू-  
षाशब्दस्य ‘न लोक-’ इत्यादिना षष्ठीप्रतिषेधः । तादृशः स तेना-  
हिना भक्षितः । अत्र भक्ष्यलामो न जातः स्वयं चाहिना भक्षित  
इति इष्टानवाप्तिपूर्विकाऽनिष्टावाप्तिः । प्रकारान्तरमपि कुबलयानन्दे  
द्रष्टव्यम् ॥ ८९ ॥

समालंकारः ।

समं स्याद्वर्णनं यत्र द्वयोरप्यनुरूपयोः ।

स्वानुरूपं कृतं सद्य हारेण कुचमण्डलम् ॥ ९० ॥

सममिति ॥ यत्रानुरूपयोः सदृशयोर्योग्ययोर्वा द्वयोरर्थयोर्व-

१ ‘दिधक्षन्मरुतः पुत्रं तमादीप्य दशाननः ।

आत्मीयस्य पुरस्यैव सद्यो दहनमन्वभूत् ॥’

‘लोके कलङ्कमपहातुमयं मृगाङ्को

जातो मुखं तव पुनस्तिलकच्छलेन ।

तत्रापि कल्पयसि तन्वि कलङ्करेखां

नार्यः समाश्रितजनं हि कलङ्कयन्ति ॥’

२ ‘कौमुदीव तुहिनांशुमण्डलं जाह्नवीव शशिखण्डमण्डनम् ।

पश्य कीर्तिरनुरूपमाश्रिता त्वां विभाति नरसिंह भूपते ॥’

र्णनं तत्रापि सममलंकारः स्यात् । सह तुल्यतया मीयते इति सम-  
मिति व्युत्पत्तेः । 'मांसैरपि शक्यं क्षुदपनेतुम्' इति भाष्यप्रयोगा-  
त्सामान्ये नपुंसकत्वम् । उदाहरणम् । हारेण गुच्छादिना कुचम-  
ण्डलं स्वानुरूपं स्वसदृशं स्वयोग्यं वा सदा स्थानं कृतम् । अत्रोभयो-  
र्वर्तुलत्वरुचिरत्वाभ्यामनुरूपत्वम् ॥ ९० ॥

सारूप्यमपि कार्यस्य कारणेन समं विदुः ।

नीचप्रवणता लक्ष्मि जलजायास्तवोचिता ॥ ९१ ॥

सारूप्यमिति ॥ कार्यस्य कारणेन सह सारूप्यं समानं रूपं  
ययोस्ते सरूपे तयोर्भावः सारूप्यं तुल्यरूपत्वमपि समं विदुः ।  
उदाहरणम् । हे लक्ष्मि, जलजायाः सागरोदितत्वाज्जलजायास्तव नी-  
चप्रवणता नीचं प्रदेशं अधमं च प्रकर्षेण वनति श्रयतीति नीचप्रव-  
णा । 'वन षण संभक्तौ' इति धातोः पचाद्यच् । तस्या भावो नीच-  
प्रवणता उचिता योग्या । 'उच समवाये' इति धातोः कर्मणि क्तः  
॥ ९१ ॥

विनानिष्टं च तत्सिद्धिर्यमर्थं कर्तुमुद्यमः ।

युक्तो वारणलाभोऽयं शालते वारणार्थिनः ॥ ९२ ॥

विनेति ॥ यमर्थं कर्तुमुद्यमः क्रियते । अनिष्टमन्तरायं विनापि  
तत्सिद्धिश्च समम् । उदाहरणम् । वारणार्थिनो गजार्थिनो निषेधा-  
र्थिनश्चेति श्लिष्टरूपकम् । युक्तः उदितोऽयं वारणलाभः प्रतिबन्धप्रा-  
प्तिर्गजप्राप्तिश्चेति श्लिष्टरूपकम् । शालते शोभते । न चात्र प्रतिबन्ध-  
लाभस्यानिष्टत्वं शङ्क्यम् । लोकदृष्ट्या अनिष्टत्वेऽपि श्लेषभित्तिकाभे-  
दाध्यवसायेन तन्नास्तीति । यद्वा अर्थद्वयमनाश्रित्य समालंकार-  
प्रवृत्तौ पुनः श्लेषालंकारप्रवृत्त्या चमत्कारातिशय इति बाधो नास्ती-  
ति । एवमन्यत्रापि बोध्यम् । लक्षणे 'यदर्थं कर्तुमुद्यमः' इति केषां-  
चित्पाठः स्पष्टार्थः ॥ ९२ ॥

१ 'दवदहनादुत्पन्नो धूमो घनतामुपेत्य वर्षेस्तम् ।

यच्छ्रमयति तद्युक्तं सोऽपि हि दवमेव विनिहन्ति' ॥

२ 'उच्चैर्गजैरटनमर्थयमान एव

त्वामाश्रयन्निह चिरादुषितोऽस्मि राजन् ।

उच्चाटनं त्वमपि लम्भयसे तदेव

मामद्य नैव विफला महतां हि सेवा ॥'



विचित्रालंकारः ।

विचित्रं तत्प्रयत्नश्चेद्विपरीतफलेच्छया ।

नमन्ति सन्तस्त्रैलोक्यादपि लब्धुं समुन्नतिम् ॥९३॥

विचित्रमिति ॥ चेद्यदि विपरीतफलेच्छया प्रयत्नः स्यात्तर्हि विचित्रं स्पष्टम् । उदाहरणम् । सन्तः साधवः त्रैलोक्यादपि । त्रयो लोका एव त्रैलोक्यमित्यत्र चातुर्वर्ण्यादित्वात् ण्यञ् । 'पञ्चमी विभक्ते' इति पञ्चमी । समुन्नतिं उत्कर्षं उन्नतत्वं चेति श्लिष्टरूपकम् । लब्धुं नमन्ति प्रह्वीभवन्ति अनुद्धतस्वभावा भवन्ति चेति श्लिष्ट- रूपकम् । अत्र नमतिरकर्मकः वन्दनार्थस्तु सकर्मक इति प्रपञ्चितं रसविन्दौ ॥ ९३ ॥

अधिकालंकारः ।

अधिकं पृथुलाधारादाधेयाधिक्यवर्णनम् ।

ब्रह्माण्डानि जले यत्र तत्र मान्ति न ते गुणाः ॥९४॥

अधिकमिति ॥ पृथुलाधारात् विशालाधिकरणात् आधेयस्य वस्तुनः आधिक्यवर्णनमधिकत्वोक्तिरधिकम् । उदाहरणम् । यत्र जले ब्रह्माण्डानि मान्ति तत्र तस्मिन्ने तव गुणाः न मान्तीति गुणा- नामाधिक्यवर्णनादधिकम् । अत्र गुणशब्देन तद्गुणनार्थो वर्णविन्या- सो लक्ष्यते ॥ ९४ ॥

पृथ्वाधेयाद्यदाधाराधिक्यं तदपि तन्मतम् ।

किर्यद्वाग्रह यत्रैते विश्राम्यन्ति गुणास्तव ॥ ९५ ॥

पृथ्विति ॥ पृथ्वाधेयाद्विशालादाधेयात् यत् आधाराधिक्यं

१ 'मलिनयितुं खलवदनं विमलयति जगन्ति देव कीर्तिस्ते ।  
मित्राह्लादं कर्तुं मित्राय द्रुह्यति प्रतापोऽपि ॥'

२ 'युगान्तकालप्रतिसंहतात्मनो  
जगन्ति यस्यां सविकाशमासत ।  
तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विष-  
स्तपोधनाभ्यागमसंभवा मुदः ॥'

३ 'अहो विशालं भूपाल भुवनत्रितयोदरम् ।  
माति मातुमशक्योऽपि यशोराशिर्यदत्र ते ॥'

तदपि तदधिकं मतम् । उदाहरणम् । वाग्ब्रह्म शब्दब्रह्म कियत् किं परिमाणमस्येति कियत् । 'किमिदंभ्यां वो घः' इति वतोर्वस्य घस्तस्य यादेशः । यत्रैते तव गुणाः विश्राम्यन्ति । गद्यपद्यात्मके हि शब्दब्रह्मणि वर्णितानां गुणानां विश्रामो भवति । एतच्छब्देन प्रत्यक्षवाचिना असंख्यातत्वं विवक्षितमिति लक्षणानुगतिः ॥ ९५ ॥

अल्पालंकारः ।

अल्पं तु सूक्ष्मादाधेयाद्यदाधारस्य सूक्ष्मता ।

मणिमालोर्मिका तेऽद्य जपमालायते करे ॥ ९६ ॥

अल्पमिति ॥ सूक्ष्मादाधेयात् यत् आधारस्य सूक्ष्मता वर्ण्यते तत्तु अल्पमलंकारः । तुशब्दः पूर्वालंकारवैलक्षण्यद्योतकः । उदाहरणम् । अद्य ते तव करे मणिमालोर्मिका मणिपङ्क्तिखचितमुद्रिका जपमालायते । अतिविशाला भवतीत्यर्थः । तेन अङ्गुल्याः करस्य वा सूक्ष्मता गम्यते ॥ ९६ ॥

अन्योन्यालंकारः ।

अन्योन्यं नाम यत्र स्यादुपकारः परस्परम् ।

त्रियामा शशिना भाति शशी भाति त्रियामया ॥ ९७ ॥

अन्योन्यमिति ॥ यत्र परस्परं क्रियाविशेषणमेतत् । उपकारः सत्कारः उपयोगो वा स्यात् तत्र अन्योन्यं नामालंकारः । उदाहरणम् । त्रियामा रात्रिः । प्रथमयामस्य धर्मशास्त्रे दिवसतुल्यत्वमिधानात्रियामात्वम् । अथवा द्विमुहूर्ता सायंसंध्या द्विमुहूर्ता च प्रातःसंध्या तद्वशिष्टा च रात्रिरिति त्रियामत्वम् । शशिना चन्द्रेण भाति, शशी च त्रियामया भाति इत्यन्योन्यसत्कारपक्षे । उपयोगपक्षे तु 'अन्योन्यतः पथि वताविभतामिभोष्ट्रौ' इत्युदाहरणम् । अन्योन्यस्मान्मेषावुपसरत इत्यत्र तु नालंकारः । चमत्काराभावात् ॥ ९७ ॥

१ 'यन्मध्यदेशादपि ते सूक्ष्मं लोलाक्षि दृश्यते ।

मृणालसूत्रमपि ते नैव माति स्तनान्तरे ॥'

यदिति । हे चञ्चलाक्षि, तव मध्यभागादपि यत्सूक्ष्मं दृश्यते तन्मृणालसूत्रमपि तव स्तनयोरन्तरे मध्ये न मातीत्यन्वयः ।

२ 'विनयैर्भाति विद्येयं विनयो भाति विद्यया ।

धनैराभान्ति दानानि दानैर्भान्ति धनान्यपि ॥'



विशेषालंकारः ।

विशेषः ख्यातमाधारं विनाप्याधेयवर्णनम् ।

गतेऽपि सूर्ये दीपस्थास्तमश्छिन्दन्ति तत्कराः ॥९८॥

विशेष इति ॥ ख्यातं प्रसिद्धं आधारं विनापि आधेयवर्णनं विशेषः । स्पष्टम् । उदाहरणम् । सूर्ये गतेऽपि अस्तमिते दीपस्थास्तत्करास्तत्किरणाः । 'सूर्यतेजः सायमग्नौ प्रविशति' इत्यागमः । तमो ध्वान्तं छिन्दन्ति नाशयन्ति । अत्र सूर्यकिरणानामाधारः सूर्य एव प्रसिद्धः । सूर्ये दूरं गतेऽपि तस्यैव करास्तमश्छिन्दन्ति इत्यप्रसिद्धकथनं विशेषः ॥ ९८ ॥

विशेषमलंकारः ।

विशेषः सोऽपि यद्येकं वस्त्वनेकत्र वर्ण्यते ।

अन्तर्बहिः पुरः पश्चात्सर्वदिक्ष्वपि सैव मे ॥ ९९ ॥

विशेष इति ॥ यदि एकं वस्तु अनेकत्र स्थितं वर्ण्यते तर्हि सोऽपि विशेषः । उदाहरणम् । अन्तर्मनसि बहिर्बाह्यप्रदेशे पुरः संमुखप्रदेशे पश्चात्पृष्ठदेशे । किं बहुना, मे मम सर्वदिक्ष्वपि सैव प्रेयसी भासते । इत्येकस्याः कामिन्याः युगपदनेकदेशवर्तित्वकथनं विशेषः ॥ ९९ ॥

किञ्चिदारम्भतोऽशक्यवस्त्वन्तरकृतिश्च सः ।

त्वां पश्यता मया लब्धं कल्पद्रुमनिरीक्षणम् ॥१००॥

१ 'दिवमप्युपयातानामाकल्पमनल्पगुणगणा येषाम् ।

रमयन्ति जगन्ति गिरः कथमिव कवयो न ते वन्द्याः ॥'

दिवमिति । दिवमुपयातानामपि येषामनल्पगुणगणयुक्ता गिरः आकल्पं कल्पपर्यन्तं जगन्ति भुवनानि रमयन्तीत्यन्वयः ।

२ 'हृदयान्नापयातोऽसि दिक्षु सर्वासु दृश्यसे ।

वत्स राम गतोऽसीति संतापेनानुमीयसे ॥'

३ 'स्फुरद्द्रुतरूपमुत्प्रतापज्वलनं त्वां सृजतानवद्यविद्यम् ।

विधिना ससृजे नवो मनोभूर्भुवि सत्यं सविता बृहस्पतिश्च ॥'

स्फुरदिति । उत्कटः प्रतापरूपो ज्वलनोऽग्निर्यस्येत्यर्थः । उक्तविशेषणं त्वां सृजता विधिना भुवि नवो मनोभवः ससृजे सृष्ट इति सत्यमित्यन्वयः ।

किञ्चिदिति ॥ किञ्चिदारम्भतः कस्यचिदारम्भः किञ्चिदारम्भः ।  
 मयूरव्यंसकादित्वात्समासः । ततः पञ्चम्यास्तसिल् । अशक्यवस्त्व-  
 न्तरकृतिः अशक्यस्य वस्त्वन्तरस्यान्यवस्तुनः कृतिः करणं च सः ।  
 उदाहरणम् । हे राजन् , त्वां पश्यता मया कल्पद्रुमनिरीक्षणं देववृ-  
 क्षावलोचनं लब्धम् । अत्र त्वमेव कल्पवृक्ष इति रूपकालंकारो व्य-  
 ज्यते । तन्मूला च पृथिव्यां कर्तुमशक्यकल्पद्रुमावलोकनस्य कृति-  
 रिति विशेषः ॥ १०० ॥

व्याघातालंकारः ।

स्याद्वाघातोऽन्यथाकारि तथाकारि क्रियेत चेत् ।

यैर्जगत्प्रीयते हन्ति तैरेव कुसुमायुधः ॥ १०१ ॥

स्यादिति ॥ चेद्यदि तथाकारि प्रसिद्धार्थकर्तृ वस्तु अन्यथाकारि  
 तद्विपरीतकारि क्रियेत निबध्येतेति यावत् । तर्हि व्याघातो नामालंकारः  
 स्यात् । यैः पुष्पैः जगत्प्रीयते तुष्यति । प्रीणातेः कर्मकर्तरि लट् ।  
 तैरेव पुष्पैः कुसुमायुधः कामो हन्ति ताडयति । अत्र प्रीतिकरत्वेन  
 प्रसिद्धानां कुसुमानां ताडनकरणत्वमन्यथाकारित्वं तानि कुसुमानि  
 चोक्तानि नर्मदामाहात्म्ये । ‘अशोकमरविन्दं च चूतं च नवम-  
 ल्लिका । शिरीषकुसुमं चैते पञ्चबाणस्य सायकाः ॥’ वस्तुतस्तु शब्दा-  
 दयः पञ्च विषया एव बाणत्वेन वर्ण्यन्ते इत्याहुः ॥ १०१ ॥

सौकर्येण निबद्धापि क्रिया कार्यविरोधिनी ।

दया चेद्बाल इति मय्यपरित्याज्य एव ते ॥ १०२ ॥

सौकर्येणेति ॥ यत्र सौकर्येण सुकरत्वेन । सुखकरत्वेनेत्यर्थः ।  
 निबद्धा प्रारब्धा क्रिया कार्यविरोधिनी सुकरत्वविरोधिनी दुःखका-  
 रिणी भवति अत्रापि व्याघातः । उदाहरणम् । हे राजन् , मयि  
 बाल इति मत्वा दया चेत् अस्ति तर्हि रणे जिगमिषुणा ते तवाह-  
 मपरित्याज्य एव गेहे न स्थापनीय एव । किंतु युद्धे सहैव नेतव्य

१ ‘दृशा दग्धं मनसिजं जीवयन्ति दृशैव याः ।

विरूपाक्षस्य जयिनीस्ताः स्तुवे वामलोचनाः ॥’

२ ‘लुब्धो न विसृजत्यर्थं नरो दारिद्र्यशङ्कया ।

दातापि विसृजत्यर्थं तयैव ननु शङ्कया ॥’



इत्यर्थः । अत्र राज्ञा सुकरत्वेन प्रारब्धं गेहे रक्षणं शूरस्य कुमारस्य दुःखतरं जातमिति कार्यविरोधित्वम् ॥ १०२ ॥

कारणमालालंकारः ।

गुम्फः कारणमाला स्याद्यथाप्रक्रान्तकारणैः ।

नयेन श्रीः श्रिया त्यागस्त्यागेन विपुलं यशः ॥ १०३ ॥

गुम्फ इति ॥ यथा प्रक्रान्तकारणैः प्रक्रान्तानि प्रथमोच्चरितान्यनतिक्रम्य इति यथाप्रक्रान्तं यथाप्रक्रान्तमुक्तानि कारणानि यथाप्रक्रान्तकारणानि । मध्यमपदलोपी समासः । तैस्तथोक्तैर्गुम्फो रचना कारणमाला स्यात् स्पष्टम् । उदाहरणम् । नयेन कारणेन श्रीः कार्यं भवति । श्रिया कारणेन त्यागः कार्यं भवति । तेन त्यागेन च विपुलं यशो भवति । अत्र यद्यपि कार्याणामपि माला विद्यते तथापि कारणगुणवर्णनमेव कविसंरम्भ इति विवक्षापूर्विका हि शब्दार्थप्रतिपत्तिरिति न्यायेन कारणमालेत्यभिधानम् ॥ १०३ ॥

एकावल्यलंकारः ।

गृहीतमुक्त्तरीत्यार्थश्रेणिरेकावली मता ।

नेत्रे कर्णान्तविश्रान्ते कर्णौ दोःस्तम्भदोलितौ ॥ १०४ ॥

गृहीतेति ॥ गृहीतमुक्त्तरीत्या आदौ गृहीतं पश्चान्मुक्तमिति गृहीतमुक्तं तस्य रीत्या निबन्धनप्रकारेण । यद्वा गृहीतं मुक्तं यस्यां सा गृहीतमुक्ता सा चासौ रीतिश्चेति तथेति विग्रहः । अर्थश्रेणिः

१ उत्तरोत्तरकारणभूतपूर्वपूर्वैः पूर्वपूर्वकारणभूतोत्तरोत्तरैर्वा वस्तुभिः कृतो गुम्फः कारणमाला । यथा वा ।

‘भवन्ति नरकाः पापात्पापं दारिद्र्यसंभवम् ।

दारिद्र्यमप्यदानेन तस्माद्दानपरो भवेत् ॥’

२ नेत्र इति । तस्य भूभुज इति सर्वत्र संबध्यते । दोःस्तम्भयोर्भुजस्तम्भयोर्दोलितमान्दोलनं ययोस्तौ । दोलनाविति पाठे दोला दोलनं ययोरस्तीति विग्रहः ।

‘मधूनि पद्मे पिबति द्विरेफः पद्मं विभाति श्रवणे प्रियायाः ।

स्पृशत्यमुष्याः श्रवणं च नेत्रं निर्यान्ति नेत्राच्छ्रवत्कटाक्षाः ॥’

इति काव्यविलासे । उत्तरोत्तरस्य पूर्वपूर्वविशेषणभावः । पूर्वपूर्वस्योत्तरोत्तरस्य विशेषणभावो वा गृहीतमुक्त्तरीतिः ।

अर्थपङ्क्तिः एकावली भता । एकावली हारविशेषः । तत्सदृशत्वात् ।  
उदाहरणम् । तस्य महीभुज इत्युत्तरश्लोकादपकृष्यते । नेत्रे कर्णा-  
न्तविश्रान्ते कर्णपर्यन्तमायते । कर्णौ च दोस्तम्भदोलितौ भुजस्तम्भ-  
लम्बिनौ । 'भुजवाहू प्रवेष्टो दोः' इत्यमरः ॥ १०४ ॥

दोस्तम्भौ जानुपर्यन्तप्रलम्बनमनोहरौ ।

जानुनी रत्नमुकुराकारे तस्य महीभुजः ॥ १०५ ॥

दोस्तम्भाविति ॥ दोस्तम्भौ जानुपर्यन्तप्रलम्बनमनोहरौ ।  
जानुनी च रत्नमुकुराकारे रत्नदर्पणतुल्ये । 'मुकुरो मणिभेदे स्यान्म-  
ल्लिकायां च दर्पणे' इति केशवः । अत्र पूर्वपदानां विशेष्यत्वमुत्तरप-  
दानां च विशेषणत्वमिति संप्रदायः । प्रकारान्तरं च कुवलयानन्दे  
द्रष्टव्यम् । अत्र केषांचित्पदानां पुनरुक्तत्वेऽपि दोषो नाशङ्क्यः ।  
सकलकविसंमतत्वाच्चमत्कारित्वाच्च । एवमावृत्तिदीपकेऽपि बो-  
ध्यम् ॥ १०५ ॥

मालादीपकालंकारः ।

दीपकैकावलीयोगान्मालादीपकमुच्यते ।

स्मरेण हृदये तस्यास्तेन त्वयि कृता स्थितिः ॥ १०६ ॥

दीपकेति ॥ दीपकैकावलीयोगात् दीप इव दीपकम् । अनेको-

१ 'न तज्जलं यत्र न चारु पङ्कजं न पङ्कजं तद्यदलीनषट्पदम् ।

'न षट्पदोऽसौ कलकूजितो न यो न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः ॥

'अद्य श्रयति पुण्येन विवेकं मतिरुद्धता ।

विवेकस्तु ममात्मानमात्मा हरिपदद्वयम् ॥'

इति काव्यविलासे ।

२ 'संग्रामाङ्गणमागतेन भवता चापे समारोपिते

देवाकर्णय येन येन सहसा यद्यत्समासादितम् ।

कोदण्डेन शराः शरैररिशिरस्तेनापि भूमण्डलं

तेन त्वं भवता च कीर्तिरतुला कीर्त्या च लोकत्रयम् ॥'

संग्रामेति । कोदण्डेन धनुषा शराः समासादिताः शरैः शत्रुमस्तकं तेन शत्रु-  
मस्तकेनापि भूमण्डलं भूमण्डलेन त्वं पालकः समासादितः भवता कीर्तिरासादिता  
कीर्त्या च लोकत्रयं समासादितमित्यनुषङ्गेणान्वयः ।



पकारकपदं तस्य चैकावल्याश्च योगाद्धेतोर्मालादीपकं नामोच्यते ।  
मालया एकावल्या युक्तं दीपकमिति व्युत्पत्तेः । स्मरेण तस्याः का-  
मिन्याः हृदये स्थितिः कृता । तेन च कामिनीमनसा त्वयि स्थितिः  
कृता । अत्र स्थितिपदस्यावृत्तेर्दीपकत्वं हृदयशब्दस्य गृहीतमुक्तत्वा-  
देकावली चेत्युभयोर्योगः ॥ १०६ ॥

सारालंकारः ।

उत्तरोत्तरमुत्कर्षः सार इत्यभिधीयते ।

मधुरं मधु पीयूषं तस्मात्तस्मात्कवेर्वचः ॥ १०७ ॥

उत्तरोत्तरमिति ॥ उत्तरोत्तरं यथोत्तरमुत्कर्षः सार इत्यभिधी-

१ 'सारा लोकेषु विद्वांसस्तेषु सारा विवेकिनः ।

तेष्वनुष्ठानकर्तारस्तेषु शंभुपदानुगाः ॥'

इति काव्यविलासे ।

'तृणाल्लघुतरस्तूलस्तूलादपि च याचकः ।

वायुना किं न नीतोऽसौ मामयं प्रार्थयेदिति ॥'

'गिरिर्महान्गिरेरब्धिर्महानब्धेर्नभो महत् ।

नभसोऽपि महद्ब्रह्म ततोऽप्याशा महीयसी ॥'

इति कुवलयानन्दे ।

'शरणं किं प्रपन्नानि विषवन्मारयन्ति वा ।

न त्यज्यन्ते न भुज्यन्ते कृपणेन धनानि यत् ॥'

शरणमिति । कृपणेन धनानि यन्न त्यज्यन्ते तर्हि तानि शरणं प्रपन्नानि यच्च  
न भुज्यन्ते तर्हि विषवन्मारयन्तीति क्रमेणान्वयः ।

'अन्तर्विष्णोस्त्रिलोकी निवसति फणिनामीश्वरे सोऽपि शेते

सिंधोः सोऽप्येकदेशे तमपि चुलकयां कुम्भयोनिश्चकार ।

धत्ते खद्योतलीलामयमपि नभसि श्रीनृसिंहक्षितीन्द्र

त्वत्कीर्तैः कर्णनीलोत्पलमिदमपि च प्रेक्षणीयं विभाति ॥'

अन्तरिति । विष्णोरन्तरुदरे त्रयाणां लोकानां समाहारत्रिलोकी । सोऽपि विष्णु-  
रपि फणिनां नागानामीश्वरे शेषे शेते निद्राति । सोऽपि शेषोऽपि सिंधोरेकदेशे  
तिष्ठतीति शेषः । तमपि सिंधुमपि कुम्भयोनिरगस्त्यश्वलकयांचकार पीतवान् ।  
अयमगस्त्योऽपि नभसि गगने खद्योतशोभां धत्ते । इदं गगनमपि प्रेक्षणीयं सुन्दरं  
त्वत्कीर्तैः कर्णभूषणं नीलोत्पलं विभातीत्यन्वयः । इति सारालंकारः ।

यते कथ्यते । उदाहरणम् । मधु क्षौद्रं मधुरं स्वादु तस्माच्च पीयूष-  
ममृतं मधुरं तस्मात् कवेर्वचो मधुरम् । 'पञ्चमी विभक्ते' इति  
पञ्चमी ॥ १०७ ॥

यथासंख्यालंकारः ।

यथासंख्यं क्रमेणैव क्रमिकाणां समन्वयः ।

शत्रुं मित्रं विपत्तिं च जय रञ्जय भञ्जय ॥ १०८ ॥

यथासंख्यमिति ॥ क्रमिकाणां क्रमप्राप्तानां क्रमेणैव समन्वयो  
यथासंख्यं स्पष्टम् । उदाहरणम् । हे राजन्, त्वं शत्रुं जय पराभव ।  
'जि अभिभवे' इति धातोर्लोट् । मित्रं च रञ्जय प्रीणय । विपत्तिं  
लोकानां कष्टं च भञ्जय । न चायं शब्दालंकारः । अन्वयकालेऽपि  
क्रमस्य विवक्षितत्वात् ॥ १०८ ॥

पर्यायालंकारः ।

पर्यायो यदि पर्यायेणैकस्यानेकसंश्रयः ।

पद्मं मुक्त्वा गता चन्द्रं कामिनीवदनप्रभा ॥ १०९ ॥

पर्याय इति ॥ यद्येकस्य वर्णनीयवस्तुनः पर्यायेणानुक्रमेण  
अनेकसंश्रयः अनेकपदार्थाश्रयणं निबध्यते तर्हि पर्यायः । परिपूर्वा-  
दयतेर्भावे घञ् । उदाहरणम् । कामिनीवदनप्रभा कान्तास्यकान्तिः  
पद्मं पङ्कजं मुक्त्वा चन्द्रं ग्लवं गता रात्राविति शेषः । निदर्शनासं-  
कीर्णमेतत् ॥ १०९ ॥

एकस्मिन्यद्यनेकं वा पर्यायः सोऽपि संमतः ।

अधुना पुलिनं तत्र यत्र स्रोतः पुराऽजनि ॥ ११० ॥

एकस्मिन्निति ॥ यदि वा एकस्मिन्पदार्थे अनेकं वस्तु वर्ण्यते  
सोऽपि पर्यायः संमतः । उदाहरणम् । यत्र यस्मिन् प्रदेशे पुरा

१ 'नन्वाश्रयस्थितिरियं तव कालकूट

केनोत्तरोत्तरविशिष्टपदोपदिष्टा ।

प्रागर्णवस्य हृदये वृषलक्ष्मणोऽथ

कण्ठेऽधुना वससि वाचि पुनः खलानाम् ॥'

नन्वाश्रयेति । हे कालकूट, उत्तरोत्तरविशिष्टमुत्कृष्टं पदं स्थानं यस्यां तादृशी-  
यमाश्रयस्थितिस्तव केनोपदिष्टेत्यन्वयः ।



स्रोतः अजनि जायतेस्म । 'दीपजन' इत्यादिना कर्तरि च्लेश्चिण् । अधुना संप्रति तत्र पुलिनं वर्तते । अत्रैकस्मिन्सरित्प्रान्ते वर्षासु प्रवाहो ग्रीष्मे च पुलिनत्वमित्यनेकवर्णनम् । 'स्रोतोऽम्बुसरणं स्वतः' इति 'तोयो-स्थितं तत्पुलिनम्' इत्यमरः । नन्वनेकशब्दस्यैकवचनमयुक्तं द्विवहुवाचित्वादिति चेन्न । अभिधीयमानसमुदायस्यैकवचनवाधाभावात् । यथा माघे 'सेव्यतेऽनेकया सन्नतापाङ्गया' इति । 'भवन्त्यनेके जल-धेरिवोर्मयः' इत्यत्र त्ववयवपरत्वात्समुदायबाहुल्याद्बहुत्वं युक्तमेवेति दिक् ॥ ११० ॥

परिवृत्त्यलंकारः ।

परिवृत्तिर्विनिमयो न्यूनाभ्यधिकयोर्मिथः ।

जग्राहैकं शरं मुक्त्वा कटाक्षात्स रिपुश्रियः ॥ १११ ॥

परिवृत्तिरिति ॥ न्यूनाभ्यधिकयोः द्भ्रादभ्रयोः मिथः परस्परम् । 'मिथोऽन्योन्यं रहस्यपि' इत्यमरः । विनिमयो व्यत्ययः परिवृत्तिः परिवर्तनं व्यत्ययकरणं परिवृत्तिरिति व्युत्पत्तेः । उदाहरणम् । स राजा एकं एकत्वसंख्याविशिष्टम् । संख्यागुणवाचिना एकशब्देन तद्विशिष्टद्रव्ये लक्षणा । 'एकोऽन्यार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा । साधारणे समानेऽल्पे संख्यायां च प्रयुज्यते ॥' इति मेदिनी । शरं रोपं मुक्त्वा रिपुं प्रति क्षिप्त्वा दत्त्वा चेति श्लिष्टं रूपकम् । रिपुश्रियः अरिलक्ष्म्याः गजतुरगादिसंपत्तिरूपायाः पद्मायाश्चेति श्लिष्टरूपकम् । 'शोभासंपत्तिपद्मासु लक्ष्मीः श्रीरिव दृश्यते' इति केशवः । कटाक्षान् तदीयवस्तुलाभानित्यर्थः । कृपासूचकत्वसादृश्येन तेषु कटाक्षत्वारोपात् बहूनित्यर्थः । 'बहुषु बहुवचनम्' इति सूत्राद्बहुशब्दाभावेऽपि कटाक्षाणां बहुत्वं एकशब्दप्रयोगादेकवचनाच्च शरस्यैकत्वमिति न्यूनाधिकभावः । जग्राह स्वीचकार, उपाददे चेति श्लिष्टरूपकम् । ततश्च राज्ञः शूरत्वं रिपूणां च पलायनं गम्यते ॥ १११ ॥

१ 'तस्य च प्रवयसो जटायुषः स्वर्गिणः किमिव शोच्यतेऽधुना ।

येन जर्जरकलेवरव्ययात्क्रीतमिन्दुकिरणोज्ज्वलं यशः ॥'

तस्य चेति । प्रवयसोऽतिवृद्धस्य जटायुषो गृध्रविशेषस्य स्वर्गं गतवतः किमिव शोचनीयम् । न किञ्चिदित्यर्थः । जर्जरं जीर्णं कलेवरं शरीरं तस्य व्ययो रावणेन सह युद्धे त्यागस्तस्माद्यशः क्रीतम् । शरीरं दत्त्वा यशो गृहीतमित्यर्थः ॥

परिसंख्यालंकारः ।

परिसंख्या निषिध्यैकमेकस्मिन्वस्तुयन्त्रणम् ।

स्नेहक्षयः प्रदीपेषु न स्वान्तेषु नतभ्रुवाम् ॥ ११२ ॥

परिसंख्येति ॥ एकस्मिन्प्रकृते एकं किञ्चिद्वस्तु निषिध्य यन्त्रणं तस्यान्यत्र नियमनं परिसंख्या । परित्यज्य संख्यानं नियमनं परिसंख्येति व्युत्पत्तेः । उदाहरणम् । स्नेहक्षयः तैलक्षयः प्रीतिक्षयश्चेति स्मिष्टरूपकं । प्रदीपेष्वेव भवति । नतभ्रुवां कामिनीनां स्वान्तेषु चित्तेषु तु न भवति । अत्र स्नेहक्षयस्य प्रदीपेषु नियमनं सुन्दरीस्वान्तेषु तन्निषेधस्पष्टीकारार्थमिति लक्षणानुगमः । स यथा सायं प्रातर्वाशनमिति श्रुतावशनस्य सायंप्रातःकालयोर्नियमनेन अन्यकाले तन्निवृत्तिरर्थलभ्या । ‘परिसंख्या विधेः फलम्’ इति मीमांसकाः । तथात्रापि स्नेहक्षयस्य नियमादर्थलभ्योऽन्यत्र निषेधः स्पष्टप्रतिपत्तये निबद्ध इति परिसंख्याविधिसादृश्यात् परिसंख्यालंकाराभिधानम् । केचित्तु काव्यार्थापत्तिकाव्यलिङ्गयोरिव तान्त्रिकाभिमतविधिवैलक्षण्याय काव्यपदं पूरणीयमित्याहुः । मुखं व्यादाय स्वपितीत्यादिवत् नियमनोत्तरकालं निषेधेऽपि निषिध्येत्यत्र क्त्वाप्रत्ययः पूर्वभावस्य बुद्धौ स्थापितत्वात् । एवं च कुवलयानन्दे संगतानि मृगाक्षीणामिति श्लोके स्त्रीसंगतस्य क्षणिकत्वोक्तेर्विरुद्धेति चेन्न । तत्र हि स्नेहस्य विषयभेदविवक्षा नतु नाशविवक्षेति ॥ ११२ ॥

विकल्पालंकारः ।

विरोधे तुल्यबलयोर्विकल्पालंकृतिर्मता ।

सद्यः शिरांसि चापान्वा नमयन्तु महीभुजः ॥ ११३ ॥

विरोध इति ॥ तुल्यबलयोः समप्राधान्ययोर्विरोधे बाध्यबाधकभावे सति विकल्पालंकृतिः विकल्पनामालंकारः मता बुधैः स्वीकृता । उदाहरणम् । महीभुजो नृपाः सद्यः शिरांसि नमयन्तु । चक्रवर्तिनो विजययात्रारम्भमात्रेण त्वां संधिं कुर्वन्त्वित्यर्थः । अथवा

१ ‘निपीय मदिरां’ दुरोदरवशो वसापङ्क्तिं

सदात्ति पिशितं हितं न खलु वेद नैवाहितम् ।

अयं यतति धावति भ्रमति मूर्च्छति ध्यायति

प्रताम्यति पलायते प्रजपति स्फुरत्यञ्चति ॥

इति काव्यविलासे ।



चापान्कोदण्डान् । 'अर्धर्चाः पुंसि च' इति पुंस्त्वम् । नमयन्तु नमने-  
नाधिज्यान्कृत्वा विग्रहं कुर्वन्त्वित्यर्थः । अत्र दूतवाक्ये संधिविग्रहयो-  
र्वाध्यबाधकत्वाद्विरोधः । गम्यमानस्याप्यलंकृतिशब्दस्य पुनरुपादा-  
नात् चारुत्वाभावेनालंकारः । यथा 'शृंगालः काको वा स्पृशतु यदि  
वा पाण्डुतनयः' इत्यादौ बाध्यबाधकभावो न चारुत्वहेतुः ॥ ११३ ॥

समुच्चयालंकारः ।

बहूनां युगपद्भावभाजां गुम्फः समुच्चयः ।

नश्यन्ति पश्चात्पश्यन्ति भ्रश्यन्ति च तव द्विषः ११४

बहूनामिति ॥ युगपद्भावभाजां युगपद्भवनं युगपद्भावः तद्भुज-  
नशीलानां बहूनामर्थानां गुम्फः संदर्भः समुच्चयः । स्पष्टम् । उदाह-  
रणम् । हे नृप, तव द्विषः नश्यन्ति पलायन्ते पश्चात्पश्यन्ति पृष्ठे  
निरीक्षन्ते । किंच भ्रश्यन्ति अधः पतन्ति । त्रासादिति भावः । अत्र  
पौर्वापर्ये सत्यपि शतपत्रपत्रशतभेदन्यायेन युगपद्भावो बोध्यः ।  
अत्रापि चारुत्वानुवृत्तेः । हरिस्त्वां मां च रक्षत्वित्यत्र समुच्चयमात्रं  
नालंकारः ॥ ११४ ॥

अहंप्रथमिकाभाजामेककार्यान्वयोऽपि सः ।

कुलं रूपं वयो विद्या धनं च मदयत्यमुम् ॥ ११५ ॥

अहमिति ॥ अहं प्रथमो यस्यामित्यहंप्रथमिका । 'शेषाद्विभाषा'  
इति कः समासान्तः । यद्वा अहंपूर्विकाशब्दस्य क्षीरस्वामिनोक्ता  
व्युत्पत्तिर्ग्राह्या । पूर्वप्रथमशब्दयोरभिन्नार्थत्वात् । तथाहि । अहं प्रथ-  
ममिति सर्वे यत्र ब्रुवते सा अहंप्रथमिका । स्वार्थे कन् । मत्वर्थीयो  
वा ठन् । एवं चाहंप्रथमिकाहंपूर्विकानाम युगपदैककार्यकरणत्वर-  
सा च कुलादीनामचेतनत्वान्न संभवतीति तत्तुल्यायामन्वययोग्यता-  
यां लक्षणा तां भजन्तीति तथोक्तानामर्थानां परस्परपदमर्देनान्वय-  
योग्यानामित्यर्थः । एककार्यान्वयः एकक्रियासंबन्धोऽपि सः समु-

१ 'कृतं प्राज्यं राज्यं जलधिपरिखे भूमिवलये

मही भुक्ता मुक्ता निरवधि कृतं कार्यमखिलम् ।

इदानीं संप्राप्तं समुचितपदं वीरशयने

शृंगालः काको वा स्पृशतु यदि वा पाण्डुतनयः ॥'

चयः । उदाहरणम् । कुलं गोत्रम् । 'कुलं गोत्रे गणे गृहे' इति विश्वः ।  
 रूपं सौन्दर्यं वयो यौवनं तस्यैव मदहेतुत्वात् विद्या श्रुत्यादिः धनं  
 वसु च अमुं भाग्यवन्तं मदयति मदमुत्सेकं करोतीति मदयति ।  
 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिजन्तात्कर्तरि लटो रूपम् । अत्र कुला-  
 दीनां खलेकपोतन्यायेन समप्राधान्यं चारुत्वहेतुः ॥ ११५ ॥

कारकदीपकालंकारः ।

क्रमिकैकगतानां तु गुम्फः कारकदीपकम् ।

गच्छत्यागच्छति पुनः पान्थः पश्यति गच्छति ११६

क्रमिकेति ॥ क्रमिकैकगतानां क्रमप्राप्तानामेकाश्रयाणां च  
 बहूनामर्थानां गुम्फो रचना कारकदीपकं कारकं कर्तृकर्मादि दीप  
 इव दीपकम् । अनेकोपकारकं यत्रेति व्युत्पत्तेः । उदाहरणम् । पान्थः  
 गच्छति पुनरागच्छति पश्यति पृच्छति च किञ्चिदिति शेषः । अत्र  
 पान्थशब्दस्य कर्तृकारकस्यानेकक्रियान्वितत्वादीपकसादृश्यम् । अत्र  
 क्रियाणां यौगपद्यं न विवक्षितमिति समुच्चयाद्भेदः ॥ ११६ ॥

समाध्यलंकारः ।

समाधिः कार्यसौकर्यं कारणान्तरसंनिधेः ।

उत्कण्ठिता च कुलटा जगामास्तं च भानुमान् ११७

समाधिरिति ॥ कारणान्तरसंनिधेः अन्यकारणसंनिध्यात्  
 कार्यसौकर्यं कार्योत्पत्तिलाघवं समाधिः सम्यगाधानमुत्पादनमिति  
 व्युत्पत्तेः । उदाहरणम् । च यदा कुलटा पांसुला उत्कण्ठा उत्सुकता  
 संजाता यस्या इत्युत्कण्ठिता । तारकादित्वादितच् । च तदा भानु-  
 मानस्तं जगाम । अत्रौत्सुक्यमात्रस्य पांसुलेप्सितसंपादकत्वेऽपि  
 सूर्यास्तोहसिततमोरूपकारणान्तरसंनिध्यात्सौकर्यं जातमिति लक्ष-  
 णानुगमः ॥ ११७ ॥

१ 'निद्राति स्नाति भुङ्क्ते चलति कचभराञ्शोषयन्त्यन्तरास्ते  
 दीव्यत्यक्षैर्न चायं गदितुमवसरो भूय आयाहि याहि ।  
 इत्युद्दण्डैः प्रभूणामसकृदधिकृतैर्वारितान्द्वारि दीनान्  
 पश्यास्यान्ये सरसिखरुचामन्तरङ्गैरपाङ्गैः ॥'



प्रत्यनीकालंकारः ।

प्रत्यनीकं बलवतः शत्रोः पक्षे पराक्रमः ।

जैत्रनेत्रानुगौ कर्णावुत्पलाभ्यामधः कृतौ ॥ ११८ ॥

प्रत्यनीकमिति ॥ बलवतः शत्रोः पक्षे सहायबले । ‘पक्षः पार्श्वगरुत्साध्यसहायबलमितिषु’ इत्यमरः । पराक्रमः पराभवः पीडनमिति यावत् । प्रत्यनीकं अनीके इति प्रत्यनीकम् । विभक्त्यर्थे-  
ऽव्ययीभावः । यद्वा अनीकं लक्षीकृत्येति प्रत्यनीकम् । ‘लक्षणेना-  
भिप्रती आभिमुख्ये’ इत्यव्ययीभावः । उदाहरणम् । उत्पलाभ्यां  
कमलाभ्यां जैत्रनेत्रानुगौ साधु यथा तथा जयतः ते जैत्रणी । ‘आ-  
केस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु’ इति साधुकारिणि तृन् प्रत्ययः ।  
जैत्रणी एव जैत्रे जैत्रे च ते नेत्रे च जैत्रनेत्रे तयोरनुगौ समीपव-  
र्तिनौ सेवकौ चेति श्लिष्टरूपकम् । कर्णावधःकृतौ भारेणाक्रान्तौ  
तिरस्कृतौ चेति श्लिष्टरूपकेण लक्षणानुगमः । तेन चोत्पलयोर्विजि-  
गीषुत्वारोपो व्यज्यते इत्यलंकारेणालंकारध्वनिः । भेदान्तरं कुव-  
यानन्दे द्रष्टव्यम् ॥ ११८ ॥

काव्यार्थापत्यलंकारः ।

कैमुत्येनार्थसंसिद्धिः काव्यार्थापत्तिरिष्यते ।

सं जितस्त्वन्मुखेनेन्दुः का वार्ता सरसीरुहम् ॥ ११९ ॥

कैमुत्येनेति ॥ कैमुत्येन किमुतभावः कैमुत्यं तेन । किमुतशब्द-  
प्रयोगेणेत्यर्थः । अर्थसंसिद्धिः व्यङ्ग्यार्थप्रतिपत्तिः । काव्यार्थापत्तिः

१ यत्र शत्रुर्बलीयान् स्वयं जेतुमशक्यः तत्र तत्पक्षाश्रितदुर्बलस्य विजयः  
कृत इति वर्णिते भवत्यलंकारः ।

‘अशक्तोऽयं तावत्तव वदनसौन्दर्यविजये

सुधाधामा धामप्रसररभसादेत्य सहसा ।

सरोजातं जातु स्फुटतदनुकारीति मतितो

निशायां सायाह्वावधि मलिनयत्येष सहसा ॥’

इति काव्यविलासे ।

‘मधुव्रतौघः कुपितः स्वकीयमधुप्रपापन्ननिमीलनेन ।

विम्बं समाक्रम्य बलात्सुधांशोः कलङ्कमङ्के ध्रुवमातनोति ॥’

२ ‘अधरोऽयमधीराक्ष्या बन्धुजीवप्रभाहरः ।

अन्यजीवप्रभां हन्त हरतीति किमद्भुतम् ॥’

कुव० ६

काव्यसंबन्धिन्यर्थापत्तिः । काव्यपदं तात्रिकार्थापत्तेर्वारणार्थं तस्याः  
प्रमाणालंकारेष्वन्तर्भावात् । इष्यते । बुधैरिति शेषः । उदाहरणम् । हे  
प्रिये, त्वन्मुखेन सः प्रसिद्धः पद्मसंकोचक इन्दुर्जितस्तर्हि सरसी-  
रुहं पद्मं जितमिति तु का वार्ता । वार्ता विनापि जातमेवेत्यर्थः ।  
कैमुत्यशब्दस्योपलक्षणत्वात् तदर्थशब्दान्तरस्यापि प्रयोगे इत्याहुः ।  
अत्र पद्मजेतरि चन्द्रे जिते पद्मं तु जितमेवेति दण्डापूपिकान्यायेन  
व्यङ्ग्यार्थाक्षेपः ॥ ११९ ॥

काव्यलिङ्गालंकारः ।

समर्थनीयस्यार्थस्य काव्यलिङ्गं समर्थनम् ।

जितोऽसि मन्द कन्दर्प मच्चित्तेऽस्ति त्रिलोचनः ॥ १२० ॥

समर्थनीयस्येति ॥ समर्थनीयस्य समर्थनसापेक्षस्यार्थस्य सम-  
र्थनं दृढीकरणम् । हेतुषु दर्शनमिति यावत् । काव्यलिङ्गं काव्याभिमतं  
लिङ्गं तर्कशास्त्राभिमतलिङ्गव्यावर्तनीयं काव्यपदम् । 'न्यायोऽनुमानं  
हेतुश्च लिङ्गं युक्तिः समर्थका' इति गोवर्धनः । हेतुस्वरूपं चोक्तमग्नि-  
पुराणे—'सिसाधयिषितार्थस्य हेतुर्भवति साधकः । कारको ज्ञापक-  
श्चेति द्विधा सोऽप्युपदिश्यते ॥' इति । तत्र दण्डेन घट इत्यादिकार-  
कहेतौ चमत्काराभावान्न काव्यलिङ्गत्वम् । उदाहरणम् । हे मन्द  
मूर्ख कन्दर्प, मया जितोऽसि । त्वमिति शेषः । यतः मच्चित्ते त्रिलोचनः  
शिवोऽस्ति । अत्र स्मरस्य जयो दुष्करत्वात्समर्थनसापेक्षः । तस्य  
समर्थनं च शिवसान्निध्योक्त्या कृतमिति वाक्यार्थहेतुकं काव्यलिङ्गम् ।  
पदार्थहेतुकं तु प्रपञ्चितं कुवलयानन्दे । अत्र त्रिलोचनपदस्य साभि-  
प्रायत्वात्परिकराङ्कुरेण परिकरेण वा तस्य संकर इति दिक् ॥ १२० ॥

अर्थान्तरन्यासालंकारः ।

उक्तिरर्थान्तरन्यासः स्यात्सामान्यविशेषयोः ।

हनूमानब्धिमतरदुष्करं किं महात्मनाम् ॥ १२१ ॥

१ काव्यलिङ्गे तु पदार्थवाक्यार्थावेव हेतुभावं भजतः । ननु यद्यपि सुखाव-  
लोकोच्छेदिनीत्यादिपदार्थहेतुककाव्यलिङ्गोदाहरणे 'अग्रेऽप्यनतिमान्' इत्यादिवाक्या-  
र्थहेतुककाव्यलिङ्गोदाहरणे च पदार्थवाक्यार्थावेव हेतुभावं भजतस्तथापि 'पशुना-  
प्यपुरस्कृतेन' इति पदार्थहेतुकोदाहरणे 'मच्चित्तेऽस्ति त्रिलोचनः' इति वाक्यार्थहे-  
तुकोदाहरणे च प्रतीयमानार्थस्यापि हेतुको ह्यनुप्रवेशो दृश्यते । पशुनेति ह्यविवे-  
कलाभिप्रायगर्भम् ।



उक्तिरिति ॥ सामान्यविशेषयोः बहुव्यापकाल्पव्यापकयोरर्थ-  
योरुक्तिः युगपदिति शेषः । अर्थान्तरन्यासः स्पष्टम् । उदाहरणम् ।  
हनूमान् वज्राङ्गः अब्धि सागरमतरत् उल्लङ्घितवान् । धातूनाम-  
नेकार्थत्वात् । तथा हि । महात्मनामलौकिकानां दुष्करं किम् ।  
न किञ्चिदित्यर्थः । अत्र प्रकृतार्थविशेषस्य समर्थनार्थं सामा-  
न्यार्थोक्तिः । सामान्यविशेषत्वेनोक्तिरर्थान्तरन्यासः । हेतुहेतुमद्भा-  
वेनोक्तिः काव्यलिङ्गमिति निर्णयः कुवलयानन्दे । कार्यकार-  
णभावेनोक्तिस्तु काव्यलिङ्गेऽन्तर्भवति । अर्थान्तरन्यासे इति  
केचित् ॥ १२१ ॥

विशेषस्य सामान्येन समर्थनमुदाहृत्य सामान्यस्य विशेषेण सम-  
र्थनमुदाहरति—

गुणवद्वस्तुसंसर्गाद्याति स्वल्पोऽपि गौरवम् ।

पुष्पमालानुषङ्गेण सूत्रं शिरसि धार्यते ॥ १२२ ॥

गुणवदिति ॥ गुणवद्वस्तुसंसर्गात् गुणयुक्तपदार्थयोगात् स्व-  
ल्पोऽपि पदार्थो गौरवं महत्त्वं याति । तथाहि । सूत्रं कार्पासादि-  
तन्तुः पुष्पमालानुषङ्गेण कुसुमपङ्क्तिसङ्गेन शिरसि धार्यते । शिरः-  
शब्दोऽत्र कण्ठपरः । अत्र गन्धगुणयुक्तानां पुष्पाणामनुष-  
ङ्गात् सूत्रस्य लघुपदार्थस्य गौरवं भारवत्त्वमादरो वा जात इति  
लक्षणानुगमः । अत्र पुष्पाणां किञ्जल्कतन्तुशालित्वाद्गुणवत्त्वमिति  
केचित् । तन्तुप्रथितत्वादित्यन्ये । सुगन्धशालित्वादिति तु कुशलाः ।  
गुणशब्दो हि प्रत्यञ्चारूपे तन्तौ प्रसिद्धो नतु किञ्जल्कादौ । तथाच  
केशवः—‘गुणोऽप्रधाने रूपादौ मौर्व्या सूत्रे वृकोदरे । स्तम्भे  
सत्त्वादिसंध्यादिविद्यादिहरितादिषु ॥’ इति ॥ १२२ ॥

विकस्वरालंकारः ।

यस्मिन्विशेषसामान्यविशेषाः स विकस्वरः ।

सं न जिग्ये महान्तो हि दुर्धर्षाः सागरा इव ॥ १२३ ॥

१ ‘अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम् ।  
एको हि दोषो गुणसंनिपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः॥’

यस्मिन्निति ॥ यस्मिन् विशेषसामान्यविशेषाः क्रमेण भवन्ति  
स विकस्वरः । विकसन् साधुकरोति विकस्वर इति व्युत्पत्तेः । 'कस्  
विकासे' इति धातोः साधुकारिणि करप् । शब्दविस्तारोऽर्थविस्तारश्च  
विकसनत्वेनाभिमतः । ततश्चमत्कारविस्तारोऽलंकारः । उदाहरणम् ।  
स राजा परैर्न जिग्ये । हि यस्मान्महान्तो दुर्धर्षाः दुर्जया भवन्ति ।  
क इव । सागरा इव । यथा महत्त्वात्सागरा दुर्धर्षाः । अत्रोपमान-  
विधयार्थत्रयविन्यासः प्रकारान्तरमप्यस्ति कुवलयानन्दे । प्राचां मते  
त्वर्थान्तरन्यासयोः संकरोऽयं न त्वलंकारान्तरं तस्यैव नामान्तरं  
वा ॥ १२३ ॥

प्रौढोक्त्यलंकारः ।

प्रौढोक्तिरुक्तार्थाहेतोस्तद्धेतुत्वप्रकल्पनम् ।

कचाः कलिन्दजातीरतमालस्तोममेचकाः ॥ १२४ ॥

प्रौढोक्तिरिति ॥ उक्तार्थाहेतोः उक्तार्थस्य प्रकृतार्थस्याहेतोः तद्धे-  
तुत्वप्रकल्पनं वर्णनीयकारणतामिधानं प्रौढोक्तिः । प्रौढानां धीमता-  
मुक्तिरिति व्युत्पत्तेः । विचित्रकल्पनाशालिनो हि धीमन्तः । उदा-  
हरणम् । कृष्णस्य कचाः केशाः कलिन्दजातीरतमालस्तोममेचकाः ।  
कलिन्दजा कलिन्दपर्वतप्रसूता यमुना तस्यास्तीरे ये तमालस्तोमाः  
त इव मेचकाः श्यामाः । 'मेचकौ श्यामधूमलौ' इति केशवः । अत्र  
तमालानां श्यामलत्वे यमुनातीरोत्पन्नत्वं तु न हेतुरित्यहेतोस्तस्य  
श्यामसमीपस्यं श्यामं भवतीति युक्तिमाश्रित्य तमालविशेषणं कृत-  
मिति लक्षणानुगमः ॥ १२४ ॥

संभावनालंकारः ।

संभावनं यदीत्थं स्यादित्यूहोऽन्यस्य सिद्धये ।

यदि शेषो भवेद्भक्ता कथिताः स्युर्गुणास्तव ॥ १२५ ॥

संभावनमिति ॥ अन्यस्य व्यङ्ग्यार्थस्य वाच्यादन्यस्य सिद्धये

१ उत्कर्षस्याहेतावुत्कर्षहेतुत्विकल्पनं प्रौढोक्तिः ।

२ कस्तूरिकामृगाणामण्डाङ्गन्धगुणमखिलमादाय ।

यदि पुनरहं विधिः स्यां खलजिह्वायां निवेशयिष्यामि ॥'

कस्तूरिकेति । अहं यदि सृष्टिकर्ता स्यां तदा कस्तूरिकामृगाणामण्डादखिलं  
गन्धरूपं गुणमादाय खलजिह्वायां निवेशयिष्यामीत्यन्वयः ।



प्रतीतये यदीत्थं स्यादित्येवंविध ऊहो वितर्कः संभावनं स्पष्टम् ।  
यद्यादिप्रयोगपूर्वकत्वाभिधानान्नातिव्याप्तिः । उदाहरणम् । हे देव,  
यदि वक्ता शेषः सहस्रमुखो भवेत् शेषो वा वक्ता भवेत् तर्हि तेन  
तव गुणाः कथिताः स्युः । अत्र यद्यादिप्रयोगपूर्वकवितर्केण गुणा-  
नामगण्यत्वसिद्धिः ॥ १२५ ॥

मिथ्याध्यवसित्यलंकारः ।

किञ्चिन्मिथ्यात्वसिद्ध्यर्थं मिथ्यार्थान्तरकल्पनम् ।

मिथ्याध्यवसितिर्वेद्यां वशयेत्स्वस्रजं वहन् ॥ १२६ ॥

किञ्चिदिति ॥ कस्यचिन्मिथ्यात्वं किञ्चिन्मिथ्यात्वम् । षष्ठीत-  
त्पुरुषः । किमः सविभक्तिकात् स्वार्थे चिदिति निपातः प्रत्ययो वा ।  
चिदन्तस्य तत्पुरुषे षष्ठ्या लुक् । तस्य सिद्ध्ये इति सिद्ध्यर्थं मि-  
थ्यार्थान्तरकल्पनं मिथ्याभूतस्यार्थान्तरस्य कल्पनं मिथ्याभूतमध्य-  
वसानं मिथ्याध्यवसितिरिति व्युत्पत्तेः । उदाहरणम् । स्वस्रजं  
गगनकुसुममालां वहन् सन् वेद्यां गणिकां वशयेत् वशीकुर्यात् । अत्र  
स्वपुष्पमालावहनोक्त्या वेश्यावशीकरणस्य मिथ्यात्वसिद्धिः । य-  
द्यादिप्रयोगाभावाच्च पूर्वस्माद्भेदः ॥ १२६ ॥

ललितालंकारः ।

प्रस्तुते वर्ण्यवाक्यार्थप्रतिबिम्बस्य वर्णनम् ।

ललितं निर्गते नीरे सेतुमेषा चिकीर्षति ॥ १२७ ॥

‘अस्य क्षोणिपतेः परार्धपरया लक्षीकृताः संख्यया

प्रज्ञाचक्षुरवेक्ष्यमाणबधिरश्राव्याः किलाकीर्तयः ।

गीयन्ते स्वरमष्टमं कलयता जातेन वन्ध्योदरा-

न्मूकानां प्रकरेण कूर्मरमणीदुग्धोदधे रोधसि ॥’

अस्येति । परार्धपरया परार्धसंख्यामतिक्रान्तया लक्षीकृता उपलक्षिताः प्रज्ञाचक्षुषा  
अन्धेनावेक्ष्यमाणश्च ता बधिरश्राव्याश्चेति कर्मधारयः । कलयता कुर्वता । प्रकरेण  
समूहेनाकूर्मरमणी कच्छपी । रोधसि तीरे । मिथ्याध्यवसितेरित्यस्य भेद इत्यत्रान्वयः ।

१ ‘क सूर्यप्रभवो वंशः क चाल्पविषया मतिः ।

तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ॥’

अत्रापि निदर्शनाभ्रान्तिर्न कार्या । अल्पविषयया मत्या सूर्यवंशं वर्णयितुमिच्छुर-  
हमिति प्रस्तुतवृत्तान्तानुपन्यासात्तत्प्रतिबिम्बभूतस्य उडुपेन सागरं तितीर्षुस्मीत्यप्र-  
स्तुतवृत्तान्तस्य वर्णनेनादौ विषमालंकारविन्यसनेन च केवलं तत्र तात्पर्यस्य गम्य-  
मानत्वात् ।

प्रस्तुत इति ॥ प्रस्तुते प्रकृते वर्ण्यो वर्णनीयो यो वाक्यार्थ-  
स्तस्य प्रतिविम्बः प्रतिनिधिस्तस्य वर्णनं ललितं स्पष्टम् । उदाहरणम् ।  
एषा नायिका नीरे निर्गते सति सेतुं पालिं चिकीर्षति कर्तुमिच्छति ।  
अत्र प्रकृता नायिका तस्या नायके गते सति तदानयनं कर्तुमिच्छ-  
तीति वर्णनीयो वाक्यार्थः । तत्प्रतिनिधिभूतार्थवर्णनालक्षणानुगतिः ।  
एषेति प्रस्तुतनिर्देशाद्रूपकातिशयोक्तिप्रभृतितो भेदः ॥ १२७ ॥

प्रहर्षणालंकारः ।

उत्कण्ठितार्थसंसिद्धिर्विना यत्नं प्रहर्षणम् ।

तामेव ध्यायते तस्मै निःसृष्टा सैव दूतिका ॥ १२८ ॥

उत्कण्ठितेति ॥ यत्नं प्रयासं विना उत्कण्ठितार्थसंसिद्धिः उ-  
त्कण्ठितस्य संजातोत्कण्ठस्यार्थिनः अर्थसंसिद्धिः कार्यनिष्पत्तिः प्रह-  
र्षणं स्पष्टम् । उदाहरणम् । तामेव प्रियानुनयकुशलतयामीप्सितामेव  
दूतीं ध्यायते चिन्तयते तस्मै नायकाय । क्रियाग्रहणाच्चतुर्थी । तमु-  
द्दिश्येत्यर्थः । सैव तदमीष्टैव दूतिका चेटिका निःसृष्टा प्रहिता सा  
मानिनी मां प्रत्यनुकूलां दूतीं कदा प्रेषयिष्यति इत्युत्कण्ठितस्य नाय-  
कस्य यत्नं विना दैवान्नायिकया सैव दूती प्रेषितेति लक्षणानुगमः ।  
उत्कण्ठालक्षणं चोक्तं कुवलयानन्दे ॥ १२८ ॥

वाञ्छितादधिकार्थस्य संसिद्धिश्च प्रहर्षणम् ।

दीर्घमुद्योतयेद्यावत्तावदभ्युदितो रविः ॥ १२९ ॥

१ 'मेघैर्मेंदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमै-  
र्नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय ।

इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं  
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहःकैलयः ॥'

अत्र राधामाधवयोः परस्परमुत्कण्ठितप्रसिद्धतरं अत्र ग्रन्थकारेण निबद्धमि-  
त्यत्रोदाहरणे लक्षणानुगतिः ।

२ 'चातकस्त्रिचतुरः पयःकणान्याचते जलधरं पिपासया ।

सोऽपि पूरयति विश्वमम्भसा हन्त हन्त महतामुदारताम् ॥

पश्येति शेषः ।



वाञ्छितादिति ॥ वाञ्छितादीप्सितादधिकार्थस्याधिकगुण-  
स्यार्थान्तरस्य संसिद्धिर्लाभश्च प्रहर्षणम् । चकारबलेन प्रतीतावपि  
पुनर्ग्रहणं चारुतरत्वार्थम् । उदाहरणम् । यावद्दीपं उद्योतयेत्तावद्-  
विरभ्युदितः । अत्र दीपेच्छोरर्कलाभः । प्रभातो यत्नं विना जात इति  
लक्षणानुगतिः ॥ १२९ ॥

यत्नादुपायसिद्ध्यर्थात्साक्षालाभः फलस्य च ।

निध्यञ्जनौषधीमूलं खनतासादितो निधिः ॥ १३० ॥

यत्नादिति ॥ उपायसिद्ध्यर्थात्कारणलाभनिमित्ताद्यत्नात् सा-  
क्षात्फलस्य कार्यस्य लाभश्च प्रहर्षणमिति संबध्यते । उदाहरणम् ।  
निध्यञ्जनौषधीमूलं निधिवोधकमञ्जनं निध्यञ्जनं निध्यञ्जनार्थं  
ओषधी निध्यञ्जनौषधी । ‘ओषध्यः फलपाकान्ताः’ इति कोशात् ।  
‘कृदिकारादक्तिनः’ इति ङीष्णतोऽपि ओषधीशब्दोऽस्ति । हैमस्तु  
‘ओषधिः स्यादौषधी च फलपाकावसानिका’ इत्याह । तस्याः मूलं  
खनता विदारयता पुंसा निधिर्धनसंचयः आसादितः प्राप्तः । ‘निधिर्ना  
शेवधिर्भेदाः पद्मशङ्खादयो निधेः’ इत्यमरः । अत्राञ्जनसंपादकमू-  
लिकाग्रहणाय भूमिं खनतस्तत्रैव निधेर्दर्शनं जातमिति लक्षणा-  
नुगमः ॥ १३० ॥

विषादनालंकारः ।

इष्यमाणविरुद्धार्थसंप्राप्तिस्तु विषादनम् ।

दीपमुद्योतयेद्यावन्निर्वाणस्तावदेव सः ॥ १३१ ॥

इष्यमाणेति ॥ इष्यमाणविरुद्धार्थसंप्राप्तिः इष्यमाणादीप्सिता-  
र्थात् विरुद्धो विपरीतो योऽर्थस्तस्य संप्राप्तिः सम्यग्लाभस्तु विषादनं  
स्पष्टम् । उदाहरणम् । यावद्दीपमुद्योतयेत् स्नेहार्पणेन प्रदीपयेत्  
तावदेव प्रदीपो निर्वाणो नष्टः । ‘निर्वाणो वाते’ इति निष्ठानत्वम् ।  
‘निर्वाणं निर्वृतौ मोक्षे विनाशे गजमञ्जने’ इत्यमरः ॥ १३१ ॥

१ ‘रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं

भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः ।

इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे

हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार ॥’

उल्लासालंकारः ।

एकस्य गुणदोषाभ्यामुल्लासोऽन्यस्य तौ यदि ।

अपि मां पावयेत्साध्वी स्नात्वेतीच्छति जाह्नवी ॥१३२॥

एकस्येति ॥ एकस्य कस्यचिद्वस्तुनः गुणदोषाभ्यामुत्कर्षापकर्षाभ्यां अन्यस्य वस्तुनो यदि तौ गुणदोषौ वर्ण्येते तदोल्लासः । स्पष्टम् । यद्यपि गुणदोषाभ्यामित्यत्र साहित्यासंभवात् द्वन्द्वसमासो दुर्वटस्तथापि भिन्नानि लक्ष्याणि बुद्धिस्थानि कृत्वा साहित्यं समाधेयम् । उदाहरणम् । साध्वी 'सती साध्वी पतिव्रता' इत्यमरः । स्नात्वा मामपि पावयेत् इति जाह्नवी नित्यमित्यच्छति । अत्र साध्व्याः पवित्रतागुणेन जाह्नव्या स गुणो वर्णित इति लक्षणानुगमः ॥ १३२ ॥

दोषेण दोषो यथा—

कौठिन्यं कुचयोः सृष्टं वाञ्छन्त्यः पादपद्मयोः ।

निन्दन्ति विश्वधातारं त्वद्भाटीष्वरियोषितः ॥ १३३ ॥

१ 'यद्यं रथसंक्षोभादंसेनासौ निपीडितः ।

एकः कृती तदङ्गेषु शेषमङ्गं भुवो भरः ॥'

अत्र नायिकासौन्दर्यगुणेन तदङ्गनिपीडितस्य खांसस्य कृतित्वगुणो वर्णितः ।

२ यत्र कस्यचिद्गुणेनान्यस्य गुणो दोषेण दोषो गुणेन दोषो दोषेण गुणो वा वर्ण्येते स उल्लासः । उदाहरणानि ।

'लोकानन्दन चन्दनद्रुम सखे नास्मिन्वने स्थायितां

दुर्वशैः कठिनैरसारहृदयैराक्रान्तमेतद्वनम् ।

ते ह्यन्योन्यनिघर्षजातदहनज्वालावलीसंकुला

न स्वान्येव कुलानि केवलमिदं सर्वं दहेयुर्वनम् ॥'

अत्र वेणूनां परस्परसंघर्षसंजातदहनसंकुललदोषेण वननाशरूपदोषो वर्णितः ।

'दानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णतालै-

दूरीकृताः करिवरेण मदान्धबुद्ध्या ।

तस्यैव गण्डयुगमण्डनहानिरेषा

भृङ्गाः पुनर्विकचपद्मवने चरन्ति ॥'

अत्र भ्रमराणामलंकारत्वगुणेन गजस्य तन्निक्षेपो दोषत्वेन वर्णितः ।

'आघ्रातं परिचुम्बितं परि मुहुर्लीढं पुनश्चर्वितं

त्यक्तं वा भुवि नीरसेन मनसा तत्र व्यथां मा कृथाः ।

हे सद्रत्न तवैतदेव कुशलं यद्धानरेणादरा-

दन्तःसारविचारणव्यसनिना चूर्णीकृतं नाश्मना ॥'

अत्र वानरस्य चापलदोषेण रत्नस्य चूर्णताभावो गुणत्वेन वर्णितः ।



काठिन्यमिति ॥ कुचयोः सृष्टं काठिन्यं पलायनकाले पाद-  
पद्मयोर्वाञ्छन्त्योऽरियोपितः निहतवैरिवनिताः त्वद्धाटीषु धाराभि-  
रटन्तीति धाट्यः । पृषोदरादित्वात्साधुः । वाजिवाहिन्यः तास्वागतासु  
विश्वधातारं ब्रह्माणं निन्दन्ति । भर्तृवधाजातवैधव्यानामस्माकं व्यर्थं  
कुचकाठिन्यं सृष्टवन्तं पलायनोपयोगिपादतलकाठिन्यं चासृष्टव-  
न्तमचतुरं विधातारं धिगिति दुःखाद्गृह्यन्तीत्यर्थः । अत्र कुचका-  
ठिन्यव्यर्थत्वदोषेण विधातुर्निन्दादोषो वर्णितः ॥ १३३ ॥

गुणेन दोषो यथा—

तदभाग्यं धनस्यैव यन्नाश्रयति सज्जनम् ।

लाभोऽयमेव भूपालसेवकानां न चेद्बधः ॥ १३४ ॥

तदिति ॥ तत् धनस्यैव अभाग्यं भाग्यहीनत्वम् । तत्किमित्यत  
आह । यद्यस्मात्सज्जनं साधुम् । 'साधुसभ्यार्यसज्जनाः' इत्यमरः ।  
नाश्रयति न सेवते । अत्र सज्जनस्य सेव्यत्वगुणेन धनस्याभाग्यत्व-  
दोषो वर्णितः । दोषेण गुणो यथा—चेद्यदि भूपालसेवकानां वधो  
न भवेत्तर्हि धनप्राप्तिं विनाप्ययमेव जीवनरूप एव लाभः । अत्र  
राज्ञः क्रौर्यदोषेण सेवकानां वधाभावो गुणत्वेन वर्णितः । केचित्तु हे  
भूपालेति संबोध्य राजानं प्रति सेवकस्येयमुक्तिरित्याहुस्तत्र । सेव-  
कस्यैवविधप्रागल्भ्यानौचित्यात् ॥ १३४ ॥

अवज्ञालंकारः ।

ताभ्यां तौ यदि न स्यातामवज्ञालंकृतिस्तु सा ।

स्वल्पमेवाम्बु लभते प्रस्थं प्राप्यापि सागरम् ।

मीलन्ति यदि पद्मानि का हानिरमृतद्युतेः ॥ १३५ ॥

१ 'मदुक्तिश्चेदन्तर्मदयति सुधीभूय सुधियः

किमस्या नाम स्यादलसपुरुषानादरभरैः ।

यथा यूनस्तद्वत्परमरमणीयापि रमणी

कुमाराणामन्तःकरणहरणं नैव कुरुते ॥'

मदुक्तिरिति । ममोक्तिः कविता सुधियोऽन्तःकरणं सुधीभूयामृतीभूय चेन्मदयति  
तोषयति तदास्या मदुक्तेररसानां नीरसानां पुरुषाणामनादरसमूहैः किं नाम स्यात्,

ताभ्यामिति ॥ यदि ताभ्यां गुणदोषाभ्यां तौ गुणदोषौ न स्यातां तर्हि सा अवज्ञालंकृतिः । अत्र गम्यमानोऽप्यलंकृतिशब्दश्च-  
मत्कारालपत्वेऽपि बाधाभावद्योतनार्थः । उदाहरणम् । गुणेन गुणा-  
भावो यथा । प्रस्थं प्रस्थपरिमितजलपात्रं सागरं वारिधिं प्राप्यापि  
स्वल्पमेवाम्बु सलिलं लभते । अत्र सागरस्य महत्त्वगुणेन प्रस्थस्या-  
धिकजललाभगुणाभावो वर्णितः । दोषे दोषाभावो यथा—मील-  
न्तीति ॥ यदि चन्द्रोदये पद्मानि मीलन्ति संकुचन्ति तर्हि अमृत-  
द्युतेः सुधांशोः का हानिः । अत्र पद्मानिमीलनदोषेण चन्द्रस्य  
हानिरूपदोषाभावो वर्णितः । सुधांशुत्वगुणबलेन पद्मद्वेषरूपदोषस्य  
तिरस्कारात् षट्पदी ॥ १३५ ॥

अनुज्ञालंकारः ।

दोषस्याभ्यर्थनानुज्ञा तत्रैव गुणदर्शनात् ।

विपदः सन्तु नः शश्वद्यासु संकीर्त्यते हरिः ॥ १३६ ॥

न किंचिदित्यर्थः । क्वचिदलसेति पाठः परमरमणीयापि रमणी स्त्री यूनस्तरुणस्य  
यथाऽन्तःकरणं मदयति न तथा बालानां तद्वदित्यन्वयः ।

‘त्वं चेत्संचरसे वृषेण लघुता का नाम दिग्दन्तिनां  
व्यालैः कङ्कणभूषणानि कुरुषे हानिर्न हेमामपि ।  
मूर्धानं कुरुषे जलांशुमयशः किं नाम लोकत्रयी-  
दीपस्याम्बुजबान्धवस्य जगतामीशोऽसि किं ब्रूमहे ॥’

त्वं चेदिति शिवं प्रति कस्यापि कवेरुक्तिः । जलांशुं चद्रं पक्षे जडांशुम् । अम्बुज-  
बान्धवः सूर्यः । अन्यत्स्पष्टम् । अत्राद्ये कवितारमणीयुगाभ्यामलसबालहृदयोक्तासरु-  
पगुणाभावो वर्णितः । द्वितीये परमेश्वरानङ्गीकारदोषेण दिग्गजादीनां लघुतादिदो-  
षाभावो वर्णितः । इत्यवज्ञालंकारः ।

१ ‘मय्येव जीर्णतां यातु यत्त्वयोपकृतं कपे ।

नरः प्रत्युपकारार्थी विपत्तिमभिकाङ्क्षति ॥

इयं हनूमन्तं प्रति राघवस्योक्तिः । अत्र प्रत्युपकाराभावो दोषः तदभ्युपगमहेतु-  
गुणो विपत्त्याकाङ्क्षाया अप्रसक्तिः सा च व्यतिरेकमुखप्रयुक्तेन सामान्येन विशेषस-  
मर्थनरूपेणार्थान्तरन्यासेन दर्शिता । यथा वा—

‘भजेम भवदन्तिकं प्रकृतिमेत्य पैशाचिकीं

किमित्यमरसंपदं प्रमथनाथ नाथामहे ।

भवद्भवनदेहलीबहुलतुण्डदण्डाहति-

त्रुटन्मुकुटकोटिभिर्मघवदादिभिर्भूयते ॥’



दोषस्येति ॥ दोषस्याप्रियस्याप्यभ्यर्थना अनुज्ञानामालंक्रतिः ।  
दोषाभ्यर्थनायां हेतुमाह । तत्रैव दोषे एव गुणदर्शनात् । गुणकल्प-  
नादित्यर्थः । उदाहरणम् । नोऽस्माकं भक्तानां शश्वन्नित्यं विपदः  
सन्तु । यासु विपत्सु हरिर्विष्णुः संकीर्त्यते । अत्र विपदोऽप्यर्थना  
हरिकीर्तनगुणानुगुणत्वादिति लक्षणसंगतिः ॥ १३६ ॥

लेशालंकारः ।

लेशः स्यादोषगुणयोर्गुणदोषत्वकल्पनम् ।

अखिलेषु विहङ्गेषु हन्त स्वच्छन्दचारिषु ।

शुक पञ्जरबन्धस्ते मधुराणां गिरां फलम् ॥ १३७ ॥

लेश इति ॥ दोषगुणयोः असत्सदर्थयोः गुणदोषत्वकल्पनं दो-  
षस्य गुणत्वकल्पनं गुणस्य च दोषत्वकल्पनमित्यर्थः । लेशोऽलंकारः  
स्यात् । लेशः कल्पनालेशोऽस्त्यस्मिन्निति लेशः । रूपकादिष्विव सो-  
पपत्तिकल्पनाभावालेशत्वम् । उदाहरणम् । हन्तेति खेदे । अखि-  
लेषु सर्वेषु विहङ्गेषु पक्षिषु स्वच्छन्दचारिषु स्वेच्छाविहारिषु सत्सु हे  
शुक, ते तव पञ्जरबन्धः पञ्जरारोपणरूपो बन्धः स मधुराणां  
प्रियाणां गिरां वाचां फलम् । अत्र सर्वपक्षिणामवागमिदोषो गुण-  
त्वेन शुकस्य वागमिद्वगुणो दोषत्वेन च वर्णितः । अप्रस्तुतप्रशंसा-  
प्यत्र संभवति ॥ १३७ ॥

मुद्रालंकारः ।

सूच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थपरैः पदैः ।

नितम्बैर्गुर्वी तरुणी दृग्युग्मविपुला च सा ॥ १३८ ॥

सूच्यार्थेति ॥ प्रकृतार्थपरैः प्रस्तुतार्थप्रतिपादकैः पदैः सूच्या-

१ दोषस्य गुणत्वकल्पनं गुणस्य दोषत्वकल्पनं च लेशः ।

२ 'सन्तः सच्चरितोदयव्यसनिनः प्रादुर्भवद्यन्त्रणाः

सर्वत्रैव जनापवादचकिता जीवन्ति दुःखं सदा ।

अव्युत्पन्नमतिः कृतेन न सता नैवासता व्याकुलो

युक्तायुक्तविवेकशून्यहृदयो धन्यो जनः प्राकृतः ॥'

३ 'अश्विनी वसतु भूष मन्दिरे मन्दिरे वसतु ते पुनर्वसु ।

रेवतीपतिकनिष्ठसेवया कृत्तिकातनयविक्रमो भव ॥'

र्थसूचनं व्यङ्ग्यार्थबोधनं मुद्रा मुद्रणम् । प्रकृतार्थे अप्रकृतार्थनिवे-  
शनं मुद्रेति व्युत्पत्तेः । उदाहरणम् । सा तरुणी युवतिः नितम्ब-  
गुर्वी नितम्बयोर्गुर्वी पीननितम्बेत्यर्थः । दृग्युग्मविपुला च विशाल-  
नयनयुगलेत्यर्थः । अत्र प्रस्तुतार्थपरे दृग्युग्मविपुलाशब्दे छेदेनानु-  
ष्टुप्छन्दोविशेषाभिधानं सूच्यते । अस्य श्लोकस्य तद्विषयत्वात् ।  
एवं हलायुधकृतायां छन्दःशास्त्रवृत्तौ सर्वच्छन्दोनामानि सूचितानि ।  
विष्णुभक्तिकल्पलतायां च तिथिवारादिनामानि सूचितानि । तत्र  
मुद्रानामैवालंकारः ॥ १३८ ॥

रत्नावल्यलंकारः ।

क्रमिकाप्रकृतार्थानां न्यासं रत्नावलीं विदुः ।

चतुरास्यः पतिर्लक्ष्म्याः सर्वज्ञस्त्वं महीपते ॥ १३९ ॥

क्रमिकेति ॥ क्रमिकाप्रकृतार्थानां क्रमं प्राप्तानामप्रस्तुतवस्तूनां  
न्यासं निवेशनं रत्नावलीं विदुः । कथयन्तीत्यर्थः । गौणोऽयं रत्नावली-  
शब्दः । यथा रत्नपङ्क्तिः सुवर्णे खचिता भवति तथा प्रस्तुतार्थपङ्क्तिः  
प्रस्तुतवाक्ये निवेशिता यत्र भवतीति सादृश्यानुगमात् । उदाह-  
रणम् । हे महीपते, त्वं चतुरास्यः सुन्दरवदनः चतुर्मुखश्चेति श्लिष्ट-  
रूपकम् । लक्ष्म्याः पतिः संपत्तिशाली रमापतिश्चेति श्लिष्टरूपकम् ।  
सर्वज्ञः सर्वविच्छंकरश्चेति श्लिष्टरूपकम् । 'सर्वज्ञस्त्रिपुरान्तकस्त्रिनयनः'  
इति हलायुधः । अत्र प्रकृते राज्ञि प्रसिद्धक्रमाणां ब्रह्मादीनामारोपः  
मुद्रालंकारे सूच्यार्थस्य प्रकृतान्वयो नास्ति इह सोऽस्तीति भेदः १३९

तद्गुणालंकारः ।

तद्गुणः स्वगुणत्यागादन्यदीयगुणग्रहः ।

पद्मरागायते नासामौक्तिकं तेऽधरत्विषा ॥ १४० ॥

१ 'रत्याप्तप्रियलाञ्छने कठिनतावासे रसालिङ्गिते

प्रह्लादैकरसे क्रमादुपचिते भूभृदुरुत्वापहे ।

कोकस्पर्धिनि भोगभाजि जनितानङ्गे खलीनोन्मुखे

भाति श्रीरमणावतारदशकं बाले भवत्याः स्तने ॥'

जनितानङ्गे जनितं अनङ्गं अङ्गरहितं मौनादि येन तस्मिन् । इत्यनेन बौद्धा-  
वतारः सूचितः ।

२ 'वीर त्वद्विपुरमणी परिधातुं पल्लवानि संस्पृश्य ।

न हरति वनभुवि निजकरुहरुचिखचितानि पाण्डुपत्रधिया ॥'



तद्गुण इति ॥ स्वगुणत्यागात् स्ववर्णपरिहारेण अन्यदीयगुण-  
ग्रहः परकीयवर्णग्रहणं तद्गुणः सः । परकीयगुणो यस्मिन्निति व्यु-  
त्पत्तेः । अत्र गुणशब्दो वर्णवाची । कोशस्तु प्रागुक्तः । उदाहरणम् ।  
हे प्रिय, ते तव नासामौक्तिकं नासाभरणं मौक्तिकमिति मध्यमप-  
दलोपी समासः । अधरत्विषा अधरोष्ठकान्त्या पद्मरागायते कुरु-  
विन्दायते । 'कर्तुः क्यङ्' इत्याचारे क्यङ् प्रत्ययः । अत्र मौक्ति-  
कस्य शुक्लगुणत्यागेनाधरशोणवर्णग्रहणात् तद्गुणः । अत्र गृह्यमाण-  
गुणस्योत्कृष्टत्वमर्थसिद्धमिति नोक्तम् ॥ १४० ॥

पूर्वरूपालंकारः ।

पुनः स्वगुणसंप्राप्तिः पूर्वरूपमुदाहृतम् ।

हरकण्ठांशुलिप्तोऽपि शेषस्त्वद्यशसा सितः ॥ १४१ ॥

पुनरिति ॥ पुनः स्वगुणसंप्राप्तिः स्वगुणस्य परेण तिरोहितस्य  
पुनः संप्राप्तिः पूर्वरूपम् । पूर्वं प्राचीनं रूपं यस्मिन्निति व्युत्पत्तेः ।  
उदाहृतमुदाहरणम् । हरकण्ठांशुलिप्तोऽपि हरकण्ठांशुभिर्नीलवर्णै-

वीरेति । हे वीर, त्वदरिकामिनी वनभुवि परिधानं कर्तुं पल्लवानि करेण संस्पृश्य  
पाण्डुपत्रबुद्ध्या न हरति न गृह्णाति । कीदृशानि । निजकररुहाणां नखानां रुच्या  
श्वेतकान्त्या खचितानि व्याप्तानीत्यर्थः ।

१ 'विभिन्नवर्णा गरुडाग्रजेन सूर्यस्य रथ्याः परितः स्फुरन्त्या ।

रत्नैः पुनर्यत्र रुचा रुचं स्वामानिन्यिरे वंशकरीरनीलैः ॥'

विभिन्नेति । माघे रैवतकगिरिवर्णनमेतत् । गरुडाग्रजेनारुणेन विभिन्नवर्णा मिश्रित-  
वर्णाः सूर्यस्य रथ्या अश्वा यत्र गिरौ वंशाङ्कुरवनीलै रत्नैः परितः स्फुरन्त्या रुचा  
स्वां रुचं नीलद्युतिमानिन्यिरे आनीतवन्तः । रुचा विभिन्नवर्णा इति वान्वयः ।

'द्वारं खड्गभिरावृतं बहिरपि प्रस्विन्नगण्डैर्गजै-

रन्तःकञ्चुकिभिर्लसन्मणिधरैरध्यासिता भूमयः ।

आक्रान्तं महिषीभिरेव शयनं त्वद्विद्विषां मन्दिरे

राजन्सैव चिरन्तनप्रणयिनी शून्येऽपि राज्यस्थितिः ॥'

द्वारमिति । हे राजन्, तव विद्विषां मन्दिरे शून्येऽपि चिरन्तनः प्रणयो यस्याः  
सैव राज्यस्य स्थितिर्मर्यादास्तीति शेषः । यतो द्वारं खड्गभिर्गण्डकाख्यपशुभिरेव  
खड्गधारभिरावृतं । बहिरपि भूमयः मदप्रस्विन्नगण्डैर्गजैरध्यासिताः । अन्तःपुरभूमयः  
विलसन्मणिधारिभिः कञ्चुकिभिः सपैरेव सौविदलैरध्यासिताः शयनं तल्पं महि-  
षीमी राजवनिताभिरेव महिषस्त्रीभिराक्रान्तमित्यन्वयः ।

लिप्तोऽपि श्यामीकृतोऽपीत्यर्थः । शेषः फणिराजः त्वद्यशसा शुक्लेन पुनः सितो जातः । अमूर्तस्यापि यशसः सितत्वं कवयो वर्णयन्ति । तथाच वाग्भट्टः । 'अप्यदृश्यां सितां कीर्तिमकीर्तिं च ततोऽन्यथा' इति । निवध्नीयादिति शेषः ॥ १४१ ॥

पूर्वावस्थानुवृत्तिश्च विकृते सति वस्तुनि ।

दीपे निर्वापितेऽप्यासीत्काञ्चीरत्नैर्महम्महः ॥ १४२ ॥

पूर्वेति ॥ वस्तुनि वर्ण्यमानपदार्थे विकृते विकारं प्राप्ते सति । विकारो द्विविधः । नाशो रूपान्तरापत्तिश्च, पूर्वावस्थानुवृत्तिः पूर्वावस्थाप्राप्तिश्च । चशब्देन पूर्वरूपमाकृष्यते । नृपसद्मनि दीपे निर्वापितेऽपि शमितेऽपि सुरतद्विधेति शेषः । काञ्चीरत्नै रशनामणिभिः महदधिकं महस्तेज आसीत् । अत्र दीपतेजोविकारेऽपि रत्नतेजसा सद्मनः पूर्वावस्थानुवृत्तिः विशेषालंकारे प्रकृतवस्तुनः स्थानान्तरावस्थानवर्णनम् । इह तु वस्त्वन्तरेण तत्कार्यसिद्धिवर्णनमिति भेदः १४२

अतद्गुणालंकारः ।

संगतान्यगुणानङ्गीकारमाहुरतद्गुणम् ।

चिरं रागिणि मच्चित्ते निहितोऽपि न रज्यसे ॥ १४३ ॥

संगतेति ॥ संगतान्यगुणानङ्गीकारं संगतस्य मीलितस्यान्यस्य योगुणस्तस्यानङ्गीकारमग्रहणमतद्गुणं आहुः । तद्गुणविरुद्धत्वादित्यर्थः । उदाहरणम् । हे नाथ, चिरं चिरकालं रागिणि प्रेमयुक्ते सिन्दूरादिरागयुक्ते चेति श्लिष्टरूपकम् । मच्चित्ते मम हृदये निहितो निवेशितोऽपि न रज्यसे स्वयमेव रक्तो न भवसि । रज्जेः कर्मकर्तरि

१ 'गण्डाभोगे विहरति मदैः पिच्छिले दिग्गजानां

वैरिस्त्रीणां नयनकमलेष्वञ्जनानि प्रमार्ष्टि ।

यद्यप्येषा हिमकरकराद्वैतसौवस्तिकी ते

कीर्तिर्दिक्षु स्फुरति तदपि श्रीनृसिंह क्षितीन्द्र ॥'

गण्डेति । हे श्रीमन्नृसिंहाख्य भूपते, एषा तव कीर्तिः मदैः पिच्छिले पङ्क्तिरे दिग्गजानां गण्डप्रदेशे यद्यपि विहरति तथा वैरिस्त्रीणां नयनकमलेषु स्थितान्यञ्जनानि प्रमार्ष्टि प्रोञ्छति तथापि दिक्षु हिमकरस्य चन्द्रस्य यत् किरणाद्वैतं तस्य सौवस्तिकी । स्वस्तीत्याहेत्यर्थे 'तदाहेति माशब्दादिभ्यष्टगवाच्यः' इत्यनेन ढक्प्रत्ययः । तत्सदृशीति यावत् । स्फुरति प्रकाशत इत्यर्थः ।



लट् । 'रज्यसि' इति पाठे रञ्जिदैवादिकोऽकर्मकः । अत्र रागिणि चेतसि निहितस्य रागाभाववर्णनमतद्गुणः । विशेषोक्तिसंकीर्णोऽयम् ॥ १४३ ॥

अनुगुणालंकारः ।

प्राक्सिद्धस्वगुणोत्कर्षोऽनुगुणः परसंनिधेः ।

नीलोत्पलानि दधते कटाक्षैरतिनीलताम् ॥ १४४ ॥

प्रागिति ॥ परसंनिधेरन्यसांनिध्यात् प्राक्सिद्धस्य पूर्वमेव स्वतः-  
सिद्धस्य स्वगुणस्योत्कर्षोऽनुगुणः । गुणमुपकारमनुगच्छतीत्यनुगुण  
इति व्युत्पत्तेः । उदाहरणम् । नीलोत्पलानि इन्दीवराणि कटाक्षैः  
कटानि वक्राणि अक्षीणि अवलोकनानि कटाक्षाः वक्रप्रेक्षणानि तैः  
अतिनीलतां नेत्रमहसा नीलतमत्वं दधते । अत्र कर्णोत्पलानां पर-  
सांनिध्यात्स्वतःसिद्धगुणोत्कर्षो वर्णितः । समाध्यलंकारे च परसां-  
निध्याज्झटिति कार्योत्पत्तिरिति ततो भेदः ॥ १४४ ॥

मीलितालंकारः ।

मीलितं यदि सादृश्याद्भेद एव न लक्ष्यते ।

रसो नालक्षि लाक्षायाश्चरणे सहजारुणे ॥ १४५ ॥

मीलितमिति ॥ यदि सादृश्याद्वस्तुद्वयस्य भेदो द्वित्वमेव न  
लक्ष्यते तर्हि मीलितम् । नपुंसके भावे क्तः । उदाहरणम् । सह-  
जारुणे चरणे पादतले लाक्षाया रसो यावको नालक्षि भिन्नतया न  
ज्ञातः ॥ १४५ ॥

सामान्यालंकारः ।

सामान्यं यदि सादृश्याद्विशेषो नोपलक्ष्यते ।

पद्माकरप्रविष्टानां मुखं नालक्षि सुभ्रुवाम् ॥ १४६ ॥

१ 'कपिरपि च कापिशायनमदमत्तो वृश्चिकेन संदष्टः ।

अपिच पिशाचग्रस्तः किं ब्रूमो वैकृतं तस्य ॥'

अत्र कपित्वजात्या स्वतःसिद्धवैकृतस्य मद्यसेवादिभिरुत्कर्षः ।

२ 'लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वालिङ्गस्य' इति शेषरे ।

३ 'मल्लिकामाल्यभारिण्यः सर्वाङ्गीणार्द्रचन्दनाः ।

क्षौमवत्यो न लक्ष्यन्ते ज्योत्स्नायामभिसारिकाः ॥'

अत्रोदाहरणे चन्द्रिकाभिसारिकाणां धवलमगुणसाम्याद्भेदानध्यवसायः ।

४ 'रत्नस्तम्भेषु संक्रान्तप्रतिबिम्बशतैर्वृतः ।

लङ्केश्वरः सभामध्ये न ज्ञातो वालिसूनुना ॥'

मीलितालंकारे एकेनापि परस्परभिन्नस्वरूपानवभासरूपं मीलनं क्रियते । सामा-  
न्यालंकारे तु भिन्नस्वरूपावभासेऽपि व्यावर्तकविशेषो नोपलक्ष्यत इति भेदः ।

सामान्यमिति ॥ यदि सादृश्याद्विशेषो भेदकधर्मविवेको नोपलक्ष्यते न ज्ञायते । द्वित्वप्रतीतावपीति भावः । तर्हि सामान्यं समानयोर्भावः सामान्यं इति व्युत्पत्तेः पद्माकरप्रविष्टानां तडागावगाहानाम् । यद्वा पद्मसमूहे प्रविष्टानाम् । 'पद्माकरस्तडागः स्यात्' इत्यमरः । सुभ्रुवां सुन्दरीणां मुखं नालक्षि । पद्मभेदे प्रतीयमानेऽपि हास्यादिभेदकधर्मं विना मुखमेतदिति न ज्ञातम् ॥ १४६ ॥

उन्मीलितविशेषकौ ।

भेदवैशिष्ट्ययोः स्फूर्तावुन्मीलितविशेषकौ ।

हिमाद्रिं त्वद्यशोमृष्टं सुराः शीतेन जानते ।

लक्षितान्युदिते चन्द्रे पद्मानि च मुखानि च ॥ १४७ ॥

भेदेति ॥ भेदवैशिष्ट्ययोः भिन्नत्वविशिष्टत्वयोः स्फूर्तौ सत्या-  
मुन्मीलितविशेषकौ भवतः । भेदस्फूर्तावुन्मीलितं मीलितप्रतिद्वन्द्वी  
वैशिष्ट्यस्फूर्तौ च विशेषकः सामान्यप्रतिद्वन्द्वी । उदाहरणम् ।  
उन्मीलितं यथा । हे राजन्, सुराः देवाः त्वद्यशोमृष्टं त्वद्यशसा  
धवलितम् । मृजेः शुद्ध्यर्थात्कर्मणि क्तः । मग्नमिति पाठे मस्जेः  
कर्तरि क्तः । यशसि मग्नमिति सप्तमीतत्पुरुषः । हिमाद्रिं हिमाचलं  
शीतेन जाड्येन । 'शीतं गुणे तद्वदर्थः' इत्यमरः । जानते शीतत्वाद्यं  
हिमाद्रिर्न तु यशोराशिरिति भेदेन विदन्तीत्यर्थः । लक्षितानीति ॥  
विशेषको यथा । चन्द्रे उदिते सति पद्मानि मुखानि च लक्षितानि  
संकोचविशिष्टानि पद्मानि संकोचाभावविशिष्टानि च मुखानीति  
विविच्य ज्ञातानीत्यर्थः । पूर्वत्र भेदमात्रज्ञानमुत्तरत्र भेदज्ञानानन्तरं  
द्वयोर्लक्षणज्ञानमिति भेदः ॥ १४७ ॥

गूढोत्तरालंकारः ।

किञ्चिदाकूतसहितं स्याद्गूढोत्तरमुत्तरम् ।

यत्रासौ वेतसी पान्थ तत्रयं सुतरा सरित् ॥ १४८ ॥

१ सामान्यरीत्या विशेषास्फुरणे प्राप्ते कुतश्चित्कारणाद्विशेषस्फूर्तौ तत्प्रतिद्वन्द्वी  
विशेषकः ।

२ 'इतः सरोजेषु सितेषु संस्थितो न लक्ष्यते हंसगणः समन्ततः ।

कदाचिदायाति विभेदमप्यसौ पतद्विरेफप्रचलत्पतत्रकैः ॥'

इति काव्यविलासे ।

३ 'काकः कृष्णः पिकः कृष्णः को भेदः पिककाकयोः ।

वसन्तकाले संप्राप्ते काकः काकः पिकः पिकः ॥'



किञ्चिदिति ॥ किञ्चिदाकृतसहितं किञ्चिच्च तदाकृतं चेति कर्मधारयः । तेन सहितं युक्तमुत्तरं गूढोत्तरं स्यात् स्पष्टम् । उदाहरणम् । हे पान्थ पथिक, यत्रासौ वेतसी तत्र इयं सरित् सुतरा सुखेन तीर्यतेऽसौ सुतरा । ईषदुरित्यादिना कर्मणि खलुप्रत्ययः । अत्र सरिद्वाधतार्थं पृच्छन्तं पान्थं प्रति वेतसीकुञ्जे संकेतस्थानमावयोरित्यभिप्रायेणोत्तरमिति लक्षणानुगतिः । अत्र ध्वनित्वेऽप्यलंकारत्वं न हीयते इति प्राञ्चः ॥ १४८ ॥

चित्रोत्तरालंकारः ।

प्रश्नोत्तरान्तराभिन्नमुत्तरं चित्रमुत्तरम् ।

के दारपोषणरताः के खेटाः किं चलं वयः ॥ १४९ ॥

प्रश्नेति ॥ प्रश्नोत्तरान्तराभिन्नं प्रश्नश्च उत्तरान्तरं चेति द्वन्द्वः । ताभ्यामभिन्नं यदुत्तरं तच्चित्रमुत्तरं चित्रोत्तरमित्यर्थः । यद्यप्यत्र वाक्येन संज्ञानवगमात्समासो युक्तस्तथापि सुरं द्विषन्नित्यादौ कचिदसमासेऽपि संज्ञात्वमस्तीति न दोषः । तच्च द्विविधं प्रश्नाभिन्नमुत्तरान्तराभिन्नं चेति । आद्यं यथा । दारपोषणरताः पत्नीपोषणतत्पराः के इति प्रश्नः । केदारपोषणरताः क्षेत्रपालनतत्परा इत्युत्तरम् । तच्च प्रश्नाभिन्नं चित्रोत्तरम् । द्वितीयं यथा । खेटाः खगाः के इत्येकः प्रश्नः । चलं लोलं किमिति द्वितीयः प्रश्नः । द्वयोरप्युत्तरं वयः पक्षिणः विशब्दस्य जसि रूपम् । किं च । वयो बाल्यादि । ‘वयः पक्षिणि बाल्यादावपि’ इत्यमरः । भेदद्वयं श्लेषसंकीर्णम् ॥ १४९ ॥

सूक्ष्मालंकारः ।

सूक्ष्मं पराशयाभिज्ञेतरसाकृतचेष्टितम् ।

मयि पश्यति सा केशैः सीमन्तमणिमावृणोत् ॥ १५० ॥

सूक्ष्ममिति ॥ पराशयाभिज्ञेतरसाकृतचेष्टितं पराशयाभिज्ञः परभाववेदी य इतरोऽन्यस्तस्य यत् साकृतचेष्टितं साभिप्रायक्रिया-

‘ग्रामेऽस्मिन्प्रस्तरप्राये न किञ्चित्पान्थ विद्यते ।

पयोधरोन्नतिं दृष्ट्वा वस्तुमिच्छसि चेद्दस ॥’

आस्तरणादिकमर्थयमानं पान्थं प्रत्युक्तिरियम् । स्तनोन्नतिं दृष्ट्वा रन्तुमिच्छसि चेद्दस ।

१ ‘संकेतकालमनसं विटं ज्ञात्वा विदग्धया ।

आसीन्नेत्रार्पिताकृतं लीलापद्मं निमीलितम् ॥’

करणं तत्सूक्ष्मम् । उदाहरणम् । सा कामिनी मयि पश्यति सति संकेतकालजिज्ञासया प्रेक्षमाणे सति केशैः सीमन्तमणिं सीमन्तभूषणरत्नं नभोर्मणिसदृशमिति भावः । केशैः शिरोरुहैरन्धकारसदृशैरिति भावः । आवृणोत् संवृणोतिस्म । सूर्ये तमसा संवृते त्वत्कार्यं भविष्यतीत्यभिप्रायगर्भं चेष्टितं सहृदयमात्रसंवेद्यत्वात्सूक्ष्मम् । कश्चित्कराभ्यामुपगूढनालमित्यादौ परभावानभिज्ञत्वचेष्टितं तु नालंकारः । नच तत्र चेष्टितस्य साभिप्रायत्वम् । तत्र स्वमनोरथमात्रजन्यत्वात् ॥ १५० ॥

पिहितालंकारः ।

पिहितं परवृत्तान्तज्ञातुः साकूतचेष्टितम् ।

प्रिये गृहागते प्रातः कान्ता तल्पमकल्पयत् ॥ १५१ ॥

पिहितमिति ॥ परवृत्तान्तज्ञातुः परवार्तामर्मज्ञस्य साकूतचेष्टितं साभिप्रायं चेष्टनम् । मर्मज्ञानसूचकव्यापारकरणमित्यर्थः । पिहितम् । अपिपूर्वाद्भातेर्भावे क्तः । भागुरिमतेनापिशब्दस्याकारलोपः । उदाहरणम् । प्रातः प्रभाते प्रिये गृहागते सति कान्ता प्रिया तल्पं शय्याम् । 'तल्पं शय्यादृदारेषु' इत्यमरः । अकल्पयदरचयत् । अत्र रात्रौ पुंश्चलीसंगतेन त्वया जारं कृतमिति च मया ज्ञातमिति शय्यारचनेन मर्मोद्घाटनं कृतं तच्च गूढत्वात्पिहितम्, सूक्ष्मालंकारे भाव्यर्थसाधनानुकूलं चेष्टितमिति ततो भेदः ॥ १५१ ॥

व्याजोक्त्यलंकारः ।

व्याजोक्तिरन्यहेतूक्त्या यदाकारस्य गोपनम् ।

सखि पश्य गृहारामपरागैरस्मि धूसरा ॥ १५२ ॥

व्याजोक्तिरिति ॥ अन्यहेतूक्त्या हेत्वन्तरकथनेन । बाहुलकात् मयूरव्यंसकादिसूत्राप्रवृत्तिः । यत् आकारस्य गोपनमप्रकाशनं सा व्याजोक्तिः स्पष्टम् । उदाहरणम् । हे सखि, त्वं पश्य अहं गृहाराम-

१ नभोमणिः सूर्यः ।

२ 'वक्रस्पन्दिस्वेदबिन्दुप्रबन्धैर्दृष्ट्वा भिन्नं कुङ्कुमं कापि कण्ठे ।

पुंस्त्वं तन्व्या व्यञ्जयन्ती वयस्या स्मित्वा पाणौ खड्गलेखां लिलेख ॥'

अत्र खेदानुमितं पुरुषायितं पुरुषोचितस्य खड्गलेखनेन प्रकाशितम् ।

३ लोकापहृतेरस्याश्चार्थं विशेषः । यथा तस्यां वचनस्यान्यथानयनेनापहवः ।

अस्यामाकारस्य हेत्वन्तरवर्णनेन गोपनमिति ।



परागैः भवनवाटिकारजोभिः । 'परागः पुष्परजसि धूलिस्त्रानीययोर-  
पि' इति विश्वः । धूसरा मलिना अस्मि पश्य । वाक्यार्थः कर्म । 'प-  
श्यानवद्याङ्गि विभाति गङ्गा' इतिवत् । अत्र भूमौ जारोपभोगजन्य-  
धूसरस्य परागस्पर्शहेतुकत्वोक्त्या स्वमर्मगोपनं कृतम् ॥ १५२ ॥

गूढोक्त्यलंकारः ।

गूढोक्तिरन्योद्देश्यं चेद्यदन्यं प्रति कथ्यते ।

वृषापेहि परक्षेत्रादायाति क्षेत्ररक्षकः ॥ १५३ ॥

गूढोक्तिरिति ॥ चेद्यदि अन्योद्देश्यं अन्यंप्रति वक्तुं योग्यं यत्  
वाक्यं तत् अन्यं तद्वित्रंप्रति कथ्यते तर्हि गूढोक्तिः । स्पष्टम् ।  
उदाहरणम् । हे वृष बलीवर्द, कामुक चेति श्लिष्टरूपकम् । परक्षेत्रा-  
दन्यकेदारात् अन्यदारेभ्यश्चेति श्लिष्टरूपकम् । अपेहि दूरं गच्छ ।  
क्षेत्ररक्षकः क्षेत्रपतिः आयाति । अत्र परदारासक्तं कामुकंप्रति  
वक्तव्यं वाक्यं परक्षेत्रप्रविष्टं वृषभमुद्दिश्योक्तं प्रस्तुताङ्कुरे श्लेषं विना-  
प्यन्यार्थप्रतीतिः । अत्र तु श्लेषमहिम्नेति ततो भेदः ॥ १५३ ॥

विवृतोक्त्यलंकारः ।

विवृतोक्तिः श्लिष्टगुप्तं कविनाविष्कृतं यदि ।

वृषापेहि परक्षेत्रादिति वक्ति ससूचनम् ॥ १५४ ॥

विवृतोक्तिरिति ॥ यदि श्लिष्टगुप्तम् । श्लिष्टं च तद्गुप्तं चेति  
कर्मधारयः स्नातानुलिप्तवत् । वस्तु कविना आविष्कृतं वाक्ये नि-  
बद्धं भवति तर्हि विवृतोक्तिः । विवृतस्य प्रकाशितस्यार्थस्योक्ति-  
रिति व्युत्पत्तेः । उदाहरणम् । हे वृष बलीवर्द, हे पुरुषेति श्लिष्टरू-  
पकम् 'परक्षेत्रात् परावपनात् परस्त्रियाश्चेति श्लिष्टरूपकम् । अपेहि

१ 'नाथो मे विपणिं गतो न गणयत्येषा सपत्नी पुन-  
स्त्यक्त्वा मामिह पुष्पिणीति गुरवः प्राप्ता गृहाभ्यन्तरम् ।  
शय्यामात्रसहायिनीं परिजनः श्रान्तो न मां सेवते  
स्वामिन्नागमलालनीय रजनीं लक्ष्मीपते रक्ष माम् ॥'

आगमेन वेदेन लालनीय स्तुल्य, पक्षे आगमेनागमनेन लालनीय खेलनीय ।  
अत्र लक्ष्मीपतिनाम्नो जारस्यागमनं प्रार्थयमानायास्तटस्थवच्चनाय भगवन्तं प्रति  
आक्रोशस्य प्रत्यायनम् ।

२ 'दृष्ट्वा केशव गोपरागहतया किञ्चिन्न दृष्टं मया

तेनेह स्खलितास्मि नाथ पतितां किं नाम नालम्बसे ।

एकस्त्वं विषमेषु खिन्नमनसां सर्वाबलानां गति-

गौर्यैवं गदितः सलेशमवताद्गोष्ठे हरिर्वश्रिरम् ॥'

दूरं गच्छेति ससूचनं यथा तथा वक्ति । कचित्कश्चिदिति शेषः ।  
सूचनं चेत्थं, परक्षेत्रे सस्यानि चरतो बलीवर्दस्य शिक्षामिषेण पर-  
वनितासक्तमित्रस्योपदेशः क्रियते इति व्यङ्ग्यार्थस्य प्रकाशनात्  
मध्यमकाव्यमेतत् ॥ १५४ ॥

युक्त्यलंकारः ।

युक्तिः परातिसंधानं क्रियया मर्मगुप्तये ।

त्वामालिखन्ती दृष्ट्वान्यां धनुः पौष्पं करेऽलिखत् १५५  
युक्तिरिति ॥ मर्मगुप्तये मर्मसदृशस्य गोप्यार्थस्य गुप्तये गोप-  
नाय क्रियया चेष्टया परातिसंधानं परस्य वञ्चनं युक्तिः । युज्यते-  
ऽसौ युक्तिरिति व्युत्पत्तेः । उदाहरणम् । हे सखे, सा त्वां आलि-  
खन्ती चित्रयन्ती अन्यां स्वसखीभिन्नां कांचिद्दृष्ट्वा करे चित्रस्य  
पाणौ पौष्पं धनुः अलिखत् । अत्र चित्रितस्य पुंसः पाणौ स्मरचि-  
ह्नपुष्पचापावलेखनक्रियया कामो मया चित्रित इति परवञ्चनं कृतं  
तेन वर्णनीयस्य कामसादृश्यं ध्वन्यते ॥ १५५ ॥

लोकोक्त्यलंकारः ।

लोकप्रवादानुकृतिर्लोकोक्तिरिति कथ्यते ।

सहस्र कतिचिन्मासान्मीलयित्वा विलोचने ॥ १५६ ॥

लोकेति ॥ लोकप्रवादानुकृतिः लोके यः प्रवादः प्रसिद्धो वादः  
प्रवादः । 'कुगतिप्रादयः' इति समासः । तस्यानुकृतिरनुसरणम् । प्रवा-  
दानुसारिवाक्यमित्यर्थः । लोकोक्तिः लोकानामुक्तिः प्रवाद इति  
व्युत्पत्तेः । इति नाम्ना कथ्यते भण्यते । उदाहरणम् । विलोचने नेत्रे  
मीलयित्वा कतिचिन्मासान्सहस्र त्वरां मा कुरु । अत्र नेत्रनिमील-  
नपूर्वकसहनोक्तिर्लोकप्रवादानुसारिणी दीर्घकालं नेत्रनिमीलनं न  
संभवति । एवं ज्ञपं मारयित्वा तिष्ठतीत्यादावपि ज्ञेयम् ॥ १५६ ॥

लोकोक्त्यलंकारः ।

लोकोक्तिर्यत्र लोकोक्तेः स्यादर्थान्तरगर्भता ।

भुजङ्ग एव जानीते भुजङ्गचरणं सखे ॥ १५७ ॥

१ 'मलयमरुतां व्राता याता विकासितमल्लिका  
परिमलभरो भग्नो ग्रीष्मस्त्वमुत्सहसे यदि ।

घन घटय तं त्वं निःस्नेहं य एव निवर्तने  
प्रभवति गवां किं न छिन्नं स एव धनंजयः ॥'



छेकोक्तिरिति ॥ यत्र वाक्ये लोकोक्तेर्लोकप्रवादस्य अर्थान्तर-  
गर्भता मिन्नार्थयुक्तता स्यात्तत्र छेकोक्तिः । छेकस्य चतुरस्योक्तिरिति  
व्युत्पत्तेः । उदाहरणम् । हे सखे, भुजङ्गः सर्प एव भुजङ्गचरणं  
सर्पपादं जानीते । बहिरप्रकटत्वादन्यस्तु नेति लोकोक्तिः । तत्र च  
भुजं वक्रं गच्छतीति भुजङ्गः । खल एव भुजङ्गचरणं खलचेष्टितं  
जानीते इत्यर्थान्तरयुक्तताप्यस्तीति लक्षणसंगतिः ॥ १५७ ॥

वक्रोक्त्यलंकारः ।

वक्रोक्तिः श्लेषकाकुभ्यामपराध्यप्रकल्पनम् ।

मुञ्च मानं दिनं प्राप्तं नेह नन्दी हरान्तिके ॥ १५८ ॥

वक्रोक्तिरिति ॥ श्लेषकाकुभ्यां श्लेषेण काका चेत्यर्थः । अने-  
कलक्ष्मणां युगपद्बुद्धौ निवेशनात् । साहित्यसंभवेन द्वन्द्वसमासो  
युक्त एवेत्युक्तम् । अपराध्यप्रकल्पनं अपरस्परविवक्षितमिन्नार्थस्य  
प्रकल्पनं संपादनं वक्रोक्तिः । वक्रस्य वक्रा वा उक्तिरिति व्युत्पत्तेः ।  
उदाहरणम् । श्लेषवक्रोक्तिर्यथा हे प्रिये, मानं मुञ्च दिनं प्राप्तं प्रातः-

१ 'नाथ मयूरो नृत्यति तुरगाननवक्षसः कथं नृत्यम् ।  
नहिनहि तत्र कलापी इह सुखलापी प्रिये कोऽस्ति ॥'

इति वाग्भट्टालंकारे ।

'अहो केनेदृशी बुद्धिर्दारुणा तव निर्मिता ।

त्रिगुणा श्रूयते बुद्धिर्न तु दारुमयी क्वचित् ॥'

'भवित्री रम्भोरु त्रिदशवदनम्लानिरधुना

स ते रामः स्थाता न युधि पुरतो लक्ष्मणसखः ।

इयं यास्यत्युच्चैर्विपदमधुना वानरचमू-

र्लघिष्ठेदं षष्ठाक्षरपरविलोपं पठ पुनः ॥'

सर्वमिदं शब्दश्लेषमूलाया वक्रोक्तेरुदाहरणम् ।

'अङ्गुल्या कः कपाटं प्रहरति कुटिले माधवः किं वसन्तो  
नो चक्री किं कुलालो नहि धरणिधरः किं द्विजिह्वः फणीन्द्रः ।

नाहं घोराहिमर्दी किमसि खगपतिर्नो हरिः किं कपीन्द्र

इत्थं राधाविवादप्रतिपदवचनः पातु वः पद्मनाभः ॥'

'भिक्षार्थी क प्रयातः सुतनु बलिमखे ताण्डवं काद्य भद्रे

मन्ये वृन्दावनान्ते क नु स मृगशिशुर्नैव जाने वराहम् ।

बाले कच्चिन्न दृष्टो जरठवृषपतिर्गोप एवात्र वेत्ता

लीलासंलाप इत्थं जलनिधिहिमवत्कन्ययोस्त्रायतां नः ॥'

कालो जात इति पुरुषस्योक्तौ स्त्रिया इहात्र स्थले नन्दी न नन्दिके-  
श्वरो न । 'नन्दिनौ नन्दिकेश्वरौ' इत्यमरः । किंतु हरान्तिके शिव-  
समीपे सोऽस्तीति श्लेषेणार्थान्तरं कल्पितं प्राप्तं हस्तगतं नन्दिनं मा  
मुञ्चेति समङ्गः श्लेषः ॥ १५८ ॥

काकुवक्रोक्तिर्यथा—

असमालोच्य कोपस्ते नोचितोऽयमितीरिता ।

नैवोचितोऽयमिति तं ताडयामास मालया ॥ १५९ ॥

असमालोच्येति ॥ हे प्रिये, ते तव असमालोच्य अविचार्य  
अयं कोपो नोचितः न युक्त इति कान्तेनेरिता प्रार्थिता काचित् अयं  
कोपो नैवोचित इति काका विरुद्धार्थमुक्त्वा तं मालया माल्येन ।  
'माला माल्यं सौमनस्यम्' इत्यमरः । ताडयामास रोषचिह्मेतत् ।  
विपरीतार्थसंपादकः पुतोच्चारोः शब्दविकारः काकुः । अत्र नका-  
रैवकारयोः संधौ पुतोच्चारो विपरीतार्थद्योतकः । 'काकुः स्त्रियां  
विकारो यः शोकभीत्यादिभिर्ध्वनेः' इत्यमरः । श्लेषवक्रोक्तिः शास्त्र-  
सिद्धा काकुवक्रोक्तिस्त्वैच्छिकीति विशेषः ॥ १५९ ॥

स्वभावोक्त्यलंकारः ।

स्वभावोक्तिः स्वभावस्य जात्यादिस्थस्य वर्णनम् ।

कुरङ्गैरुत्तरङ्गाक्षैः स्तब्धकर्णैरुदीक्षितम् ॥ १६० ॥

स्वभावोक्तिरिति ॥ जात्यादिस्थस्य जातिगुणादिनियतस्य  
स्वभावस्य वर्णनं स्वभावोक्तिः स्पष्टम् । उदाहरणम् । उत्तरङ्गाक्षैः  
उत्तरङ्गाण्यधिकतरङ्गयुक्तान्यक्षीणि येषां तैः स्तब्धकर्णैः स्तब्धा  
जडीभूताः कर्णा येषां तैश्च कुरङ्गैर्मृगैः उदीक्षितं चञ्चलतया अ-  
धिकं विलोकितम् । नपुंसके भावे क्तः । मृगजातिस्थः स्वभावोऽयं  
तदवलोकनक्रियास्वभावो वा आदिशब्दाद्वयोवस्थाविकारादिस्वभावा

१ 'आरूढक्षितिपालभालविगलत्स्वेदाम्बुसेकोद्धता

भेरीझांकृतिचापटंकृतिचमत्कारोल्लसन्मानसाः ।

क्षुभ्यत्क्षोणितलं स्फुरत्खुरपुटं चञ्चलत्केसरं

मन्दभ्रान्तविलोचनं प्रतिदिशं नृत्यन्ति वाजिब्रजाः ॥'

अत्र जलसेकेन वाजिनामौद्धत्यं स्वभाव एव नर्तनकाले चलत्केसरादिकमपि  
स्वभावः स चात्र वर्णित इति भवति स्वभावोक्तिरलंकार इति काव्यविलासे ।



उन्नेयाः । प्राचां मते तु जातेरेव स्वभावोक्तिः । अतएव 'स्वभावो-  
क्तिरसौ जातिः' इति वाग्भट्टेनास्या जातिरिति नामान्तरमुक्तम् १६०

भाविकालंकारः ।

भाविकं भूतभाव्यर्थसाक्षात्कारस्य वर्णनम् ।

अहं विलोकयेऽद्यापि युध्यन्तेऽत्र सुरासुराः ॥ १६१ ॥

भाविकमिति ॥ भूतभाव्यर्थसाक्षात्कारस्य भूतभाविनोरर्थयोः  
कचिद्भूतस्य कचिद्भाविनोऽर्थस्य यः साक्षात्कारोऽनुभवस्तस्य वर्णनं  
भाविकम् । भावाय साक्षात्काराय प्रभवतीति भाविकमिति व्युत्पत्तेः ।  
उदाहरणम् । अत्र सुरासुराः सुरासुरविरोधस्य राज्यहेतुकत्वादाखु-  
विडालादिवत् स्वाभाविकत्वाभावादेकवद्भावो न । युध्यन्ते इत्यह-  
मद्यापि विलोकये पश्यामि । भूतार्थसाक्षात्कारोऽयम् । एवं भावि-  
नोऽप्युदाहरणमूह्यम् ॥ १६१ ॥

उदात्तालंकारः ।

उदात्तमृद्धिश्चरितं श्लाघ्यं चान्योपलक्षणम् ।

सानौ यस्याभवद्युद्धं तद्धूर्जटिकिरीटिनोः ॥ १६२ ॥

उदात्तमिति ॥ ऋद्धिः संपत्तिः श्लाघ्यं स्तुत्यं चरितमवदातं  
च । 'अवदातं महत्कर्म' इत्यमरः । अन्योपलक्षणं अन्यस्य उपल-  
क्षणं श्लाघ्यताबोधकं सत् उदात्तम् । उत्कर्षेणादीयते गृह्यतेस्मेत्युदा-  
त्तम् । भावे कर्मणि क्तः । श्लाघ्यशब्दस्य ऋद्धिविशेषणत्वे लिङ्गवि-  
परिणामो बोध्यः । उदाहरणम् । यस्य हिमाद्रेः सानौ शिखरे तत्प्र-  
सिद्धं धूर्जटिकिरीटिनोः धुरि अग्रे जटा यस्य धूर्जटिः शिवः । पृषो-  
दरादित्वात्साधुः । स च प्रशस्तं किरीटमिन्द्रदत्तमस्यास्तीति किरीटी  
धनंजयः स च तयोर्युद्धमभूत् । अत्र श्लाघ्यचरितं हिमाचलश्लाघ्य-  
ताबोधकमिति विलोमक्रमेणोदाहरणम् ॥ १६२ ॥

ऋद्धिर्यथा—

रत्नस्तम्भेषु संक्रान्तैः प्रतिबिम्बशतैर्वृतः ।

ज्ञातो लङ्केश्वरः कृच्छ्रादाञ्जनेयेन तत्त्वतः ॥ १६३ ॥

रत्नस्तम्भेष्विविति ॥ रत्नस्तम्भेषु रत्नमयस्तम्भेषु संक्रान्तैः प्रविष्टैः  
प्रतिबिम्बानां शतैः समूहैः । बहुभिः प्रतिबिम्बैरित्यर्थः । संख्यानु-  
पयोगाच्छब्दस्य बहुत्वे पर्यवसानम् । उक्तं च वेदनिघण्टौ 'शतं स-

हस्मिति बहोः' इति । वृतः परिवारितो लंकेश्वरो रावणः आज्ञनेयेन  
अञ्जनाया अपत्येन हनुमता तत्त्वतः परमार्थतः कृच्छ्रात् ज्ञातः ।  
ल्यब्लोपे पञ्चमी । कृच्छ्रं प्राप्य ज्ञात इत्यर्थः । अत्र श्लाघ्या संपत्तिः पौ-  
लस्त्यस्य महत्त्वं सूचयति । अत्र संबन्धातिशयोक्तिरप्यस्तीत्याह १६३

अत्युत्तयलंकारः ।

अत्युक्तिरद्भुतातथ्यशौर्यौदार्यादिवर्णनम् ।

त्वयि दातरि राजेन्द्र याचकाः कल्पशाखिनः ॥ १६४ ॥

अत्युक्तिरिति ॥ अद्भुतं आश्चर्यभूतं अतथ्यं मिथ्याभूतं यच्छौ-  
र्यौदार्यादिवर्णनं तदत्युक्तिः । उदाहरणम् । हे राजेन्द्र, त्वयि दातरि  
सति याचकाः कल्पशाखिनो भवन्ति । अत्र राज्ञः कल्पशाखिनु-  
ल्यत्वेनाश्चर्यं याचकानां तु तथात्वे चित्रमेवेत्युक्तिः । संबन्धाति-  
शयोक्तेरतथ्यत्वमात्रं विशेषः । अतथ्यस्याप्यभिधानमद्भुतत्वेन चम-  
त्कारकारि । केचित्तु कल्पशाखिनोऽपि याचका भवन्तीत्यन्वयं म-  
न्यन्ते । कल्पद्रुमाणामपि याचकत्वे कैमुतिकन्यायेन सर्वेषां याच-  
कत्वमर्थसिद्धमिति दानात्युक्तिः ॥ १६४ ॥

निरुत्तयलंकारः ।

निरुक्तिर्योगतो नाम्नामन्यार्थत्वप्रकल्पनम् ।

ईदृशैश्वरितैर्जाने सत्यं दोषाकरो भवान् ॥ १६५ ॥

निरुक्तिरिति ॥ नाम्नामभिधानानां योगतो व्युत्पत्त्या अन्या-  
र्थत्वप्रकल्पनं भिन्नार्थपरतया योजनं निरुक्तिः । निश्चित्योक्तिः निरु-  
क्तिरिति व्युत्पत्तेः । उदाहरणम् । हे चन्द्र, ईदृशैर्विरहिदुःखसहै-  
श्वरितैः भवान् दोषाकर इति सत्यं जाने । अत्र दोषेति रात्रिवा-  
चकमव्ययम् । दोषा करोतीति दोषाकर इति प्रसिद्धोऽर्थः । दोषा-  
णामाकर इति तु तद्विन्नः कल्पितोऽर्थ इति लक्षणानुगमः ॥ १६५ ॥

प्रतिषेधालंकारः ।

प्रतिषेधः प्रसिद्धस्य निषेधस्यानुकीर्तनम् ।

न द्यूतमेतत्कितव क्रीडनं निशितैः शरैः ॥ १६६ ॥

प्रतिषेध इति ॥ प्रसिद्धस्य अनुक्तसिद्धस्य निषेधस्यानुकीर्तनं  
प्रतिषेधः । स्पष्टम् । उदाहरणम् । हे कितव हे द्यूतकार हे शकुने,  
एतद्व्यूतं न । किंतु निशितैः शरैः क्रीडनं खेलनम् । अत्र युद्धस्य



द्युतत्वाभाव उक्तिं विनापि प्रसिद्धः तस्य पुनर्निषेधेन तव द्युतमात्रे  
कौशल्यमस्ति न तु युद्धे इति ध्वनयति ॥ १६६ ॥

विध्यलंकारः ।

सिद्धस्यैव विधानं यत्तदाहुर्विध्यलंकृतिम् ।

पञ्चमोदञ्चने काले कोकिलः कोकिलो भवेत् ॥ १६७ ॥

सिद्धस्येति ॥ यत् सिद्धस्य उक्तिं विनापि ज्ञातस्यैव विधानं  
ज्ञापनं तत् विध्यलंकृतिं विधिसंज्ञामलंकृतिमाहुः । प्रकरणगम्यत्वे-  
ऽप्यलंकृतिशब्दादग्निहोत्रं जुहोतीत्यादावपूर्वविधेर्नालंकारत्वम् । उदा-  
हरणम् । पञ्चमोदञ्चने पञ्चमस्वरप्रकटने काले वसन्तरूपे कोकिलः  
पिकः कोकिलो मनोहरो भवेत् । अत्र स्वतःसिद्धस्यैव कोकिल-  
त्वस्य वसन्ते पुनर्विधानं मनोहरत्वबोधनाय ॥ १६७ ॥

हेत्वलंकारः ।

हेतोर्हेतुमता सार्धं वर्णनं हेतुरुच्यते ।

असावुदेति शीतांशुर्मानच्छेदाय सुभ्रुवाम् ॥ १६८ ॥

हेतोरिति ॥ हेतोः कारकस्य ज्ञापकस्य वा हेतुमता हेतुसाध्येन  
सहैकस्मिन्वाक्ये वर्णनं हेतुर्नामालंकार उच्यते । कारणवाचको  
हेतुशब्दोऽलंकारे लाक्षणिकः तद्वर्णनप्रधानत्वात् । उदाहरणम् ।  
असौ शीतांशुश्चन्द्रः सुभ्रुवां सुन्दरीणां सुष्ठु भ्रुवो यासामिति भ्रूमा-  
त्रप्रशंसनेऽपि लक्षणया सर्वाङ्गप्रशंसा बोध्या । मानच्छेदाय मान-  
च्छेदं कर्तुमेवेत्यर्थः । 'तुमर्थाच्च भाववचनात्' इति चतुर्थी । उदेति ।  
अत्र चन्द्रोदयो हेतुः मानच्छेदश्च हेतुमान् तयोरेकवाक्ये निवेशनं  
फलान्तरनिषेधार्थम् । न चात्र लुप्तोत्प्रेक्षा शङ्क्या एवकाराध्याहारात् ।  
न चायं काव्यलिङ्गेऽन्तर्भवति समर्थ्यसमर्थकभावाभावात् । कारक-  
हेतोरिदमुदाहरणं । ज्ञापकहेतोस्तु कुमुदानि विकसन्ति कामिनीः  
सज्जयितुमित्यर्थः ॥ १६८ ॥

हेत्वलंकारप्रकारान्तरम् ।

हेतुहेतुमतोरैक्यं हेतुं केचित्प्रचक्षते ।

लक्ष्मीविलासा विदुषां कटाक्षा वेङ्कटप्रभोः ॥ १६९ ॥

हेत्विति ॥ हेतुहेतुमतोः साधनसाध्ययोरैक्यमभेदं केचिदालं-  
कारिकाः हेतुं हेत्वलंकारं प्रचक्षते प्राहुः । उदाहरणम् । वेङ्कटप्रभोः  
करिगिरीश्वरस्य कटाक्षाः कृपापाङ्गावल्लोकाः विदुषां पण्डितानां

लक्ष्मीविलासाः संप्रसार एव । अत्र कटाक्षाणां हेतूनां विला-  
सानां हेतुमतां चाभिन्ननिर्देशेन लक्षणसंगतिः । अमेदोक्तिश्च कार्य-  
शैध्यप्रत्यायनाय । न चायं रूपकेऽन्तर्भवति, ततोऽपि विच्छित्तिवि-  
शेषसद्भावात् । नाप्यतिशयोक्तौ, तद्भेदेभ्यो वैलक्षण्यसंभवात् । नापि  
परिणामे, क्रियाया अतिबन्धनादित्यलमतिविस्तरेण ॥ १६९ ॥

इत्थं शतमलंकारा लक्षयित्वा निदर्शिताः ।

प्राचामाधुनिकानां च मतान्यालोच्य सर्वशः ॥ १७० ॥

इत्थमिति ॥ प्रकर्षेण कालाधिक्येनाञ्चन्ति गच्छन्तिस्मेति  
प्राञ्चः पूर्वकालवर्तिनस्तेषाम् । पुरातनानामित्यर्थः । आधुनिकानां  
अधुना भवानां पण्डितानां च सर्वशः सर्वाणि मतान्यालोच्य शतं  
शतसंख्याका अलंकाराः इत्थमनेन प्रकारेण लक्षयित्वा निरूप्य  
निदर्शिताः । उदाहृता इत्यर्थः । नन्वेतावतः प्रयत्नस्य फलमनुद्दिश्य  
प्रवर्तितः कथं घटते इति चेत्सत्यम् । 'एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः  
सुप्रयुक्तः स्वर्गलोके कामधुग्भवति' इति भाष्यकारोक्तं शब्दप्रयोगस्य  
पारलौकिकं फलमस्त्येव । किंच 'काव्यं यशसेऽर्थकृते' इत्यादि प्रा-  
माणिकपण्डितोक्तं राजप्रसादादिकमैहिकमपीति । एवं श्रूयते—अप्प-  
य्यदीक्षितो नाम द्राविडः पण्डितो रङ्गराजसूनुः । स पितुराज्ञया  
वेङ्कटाद्रिराजमुपजगाम । स च राज्ञाभ्यर्थितश्चन्द्रालोकं नाम ग्रन्थं  
चकार । राज्ञा वर्षासनं दत्त्वा ग्रहितोऽलंकारविवेचनाय प्रार्थित-  
श्चेमाः कारिकाः कुवलयानन्दं च कृत्वा वेङ्कटेशं प्रसादयामासेति ।

धरणीधरगुरुचरणशरणीकरणात्कुवलयानन्दे ।

स्फूर्तिर्मम सानुबन्धा इति सूचयितुं प्रयत्नोऽयम् ॥ १७० ॥

अथोद्देशमात्रेणावशिष्टान्पञ्चदशलंकारानाह । यद्यपि तेषां ल-  
क्ष्यलक्षणयोरपि रचनार्हत्वमस्ति तथापि शास्त्रान्तरसाकाङ्क्षत्वेन  
बालैर्दुर्ग्रहत्वादुद्देशमात्रेणाभिधानं युक्तम् । तथाहि—

चत्वारो रसवत् प्रेय ऊर्जस्वी च समाहितम् ।

भावस्य चोदयः संधिः शबलत्वमिति त्रयः ॥ १७१ ॥

चत्वार इति ॥ एवं क्रमादन्यानपि पञ्चदशलंकारान् बुधाः  
विदुः लक्षणया कथयन्तीत्यर्थः । ते च रसवत्, प्रेय, ऊर्जस्वी,  
समाहितमिति चत्वारः । किंच भावस्य उदयः भावयोः संधिः  
भावानां शबलत्वं चेति त्रयः प्रत्यक्षप्रमुखाः प्रत्यक्षादयः ॥ १७१ ॥



अष्टौ प्रमाणालंकाराः प्रत्यक्षप्रमुखाः क्रमात् ।

एवं पञ्चदशाप्यन्यानलंकारान्विदुर्बुधाः ॥ १७२ ॥

इति श्रीमदद्वैतप्रतिष्ठापनधुरीणरङ्गराजाध्वरीन्द्र-

सूनोरप्पय्यदीक्षितस्य कृतौ कुवलयानन्दे

मूलकारिकाः समाप्ताः ॥

अष्टौ प्रमाणालंकाराः प्रमाणान्येवालंकारा इति ॥ १७२ ॥

इति श्रीपद्माक्ष्यप्रमाणपारावारीणरामजीमट्टात्मजाशाधरभट्टविर-

चितायां कुवलयानन्दकारिकाव्याख्यायामलंकारदीपिका-

समाख्यायां प्रथमं लक्ष्यलक्षणप्रकरणं समाप्तम् ॥

## उद्दिष्टालंकारप्रकरणम् २

एतेषां लक्षणं वक्ष्ये संक्षेपालक्ष्यसंयुतम् ।

बालानामुपकाराय संसृष्टेः संकरस्य च ॥ १ ॥

एतेषामिति ॥ स्पष्टार्थः ॥ १ ॥

रसवदलंकारः ।

अन्याङ्गत्वे रसस्य स्याद्रसवन्नाम तद्यथा ।

अहो स्यूतशरीरार्धः शंभुर्देव्या वशीकृतः ॥ २ ॥

अन्येति ॥ रसस्य शृङ्गारादेः अन्याङ्गत्वेऽन्यस्य सजातीयस्य विजातीयस्य वा अङ्गत्वे उपकारकत्वे सति रसवत् रसोऽस्मिन्नस्तीति रसवत् नाम स्यात् । सामान्ये नपुंसकत्वम् । तद्यथा । यथाशब्दो निदर्शने । उदाहरणम् । अहो इत्याश्चर्ये । देव्या वशीकृतः शंभुः स्यूतशरीरार्धः स्पर्शमुखलोभात् संश्लिष्टशरीरार्धो जातः । शंभो-रप्येवं काममोहे तदन्येषां का गतिरित्याश्चर्यम् । अत्राद्भुतरसो मुख्यः शृङ्गारस्तु तस्याङ्गमिति रसवदलंकारः । रसस्वरूपमुक्तं काव्यप्रकाशे—‘कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च । रत्यादिस्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः ॥ १ ॥’ विभावा अनुभावाश्च कथं ते व्यभिचारिणः । व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायि-भावो रसः स्मृतः ॥ २ ॥ स्थायिभावश्च नवविधः । स यथा—‘रति-र्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा । जुगुप्साविस्मयशमाः स्थायि-भावाः प्रकीर्तिताः ॥ ३ ॥ इति स्थायिभावश्च रसत्वं प्राप्य नवविधो

भवति । स यथा—‘शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः । वीभ-  
त्साद्भुतशान्ताख्या नव नाट्ये रसाः स्मृताः’ ॥ ४ ॥ इति । एषां  
लक्षणादिविस्तरस्तु रसविलासे द्रष्टव्यः ॥ २ ॥

प्रेयोऽलंकारः ।

भावस्य चापराङ्गत्वे प्रेयोऽलंकार ईरितः ।

धिक् तारुण्यमिदं यत्र प्रिया दैवेन दूरिता ॥ ३ ॥

भावस्येति ॥ भावस्य वक्ष्यमाणस्वरूपस्य अपराङ्गत्वे सजाती-  
यस्य विजातीयस्य बोधसर्जनत्वे प्रेयोऽलंकारः । अतिशयेन प्रिय-  
मिति प्रेय इति व्युत्पत्तेः । ईरित उक्तः । उदाहरणम् । इदं मम  
तारुण्यं यौवनं धिक् । धिग्योगे द्वितीया । यत्र यस्मिन् प्रिया कान्ता  
दैवेन दुरदृष्टेन दूरिता दूरीकृता । अत्र निर्वेदाख्यो भावो विप्रलम्भशृ-  
ङ्गारस्याङ्गमिति प्रेयोऽलंकारः । भावस्वरूपमुक्तं काव्यप्रकाशे—‘रति-  
दैवादिविषया व्यभिचारितयाञ्चितः । भावः प्रोक्तस्तदाभासास्वनौ-  
चित्यप्रवर्तिताः ॥ १ ॥’ इति । व्यभिचारी च त्रयस्त्रिंशद्भेदः । स  
यथा—‘निर्वेदग्लानिशङ्काख्यास्तथासूयामदश्रमाः ॥ आलस्यं चैव  
दैन्यं च चिन्ता मोहः स्मृतिधृतिः ॥ व्रीडा चपलता हर्ष आवेगो  
जडता तथा । गर्वो विषाद औत्सुक्यं निद्रापस्मार एव च । स्वप्नो  
विवोधोऽमर्षश्चाप्यवहित्थमथोग्रता । मतिर्व्याधिस्तथोन्मादस्तथा मर-  
णमेव च ॥ त्रासश्चैव वितर्कश्च विज्ञेया व्यभिचारिणः । त्रयस्त्रिंश-  
दमी भावाः समाख्यातास्तु नामतः ॥’ इति । विस्तरस्तु काव्यप्र-  
दीपे रसविलासे च द्रष्टव्यः ॥ ३ ॥

ऊर्जस्व्यलंकारः ।

आभासस्याङ्गता यत्र तत्रोर्जस्वि मतं बुधैः ।

परदारस्तनस्पर्शी दिशः पश्यति कम्पितः ॥ ४ ॥

आभासस्येति ॥ आभासस्य भावाभासस्य रसाभासस्य वा  
यत्राङ्गता गौणता भवति बुधैस्तत्रोर्जस्वि मतम् । ऊर्जः शोभा  
पाटवमस्यास्तीत्यूर्जस्वीति निरुक्तिः । उदाहरणम् । परदारस्तनस्पर्शी  
कश्चन कामुकः कम्पितः संजातकम्पः सन् दिशः पश्यति । कश्चिन्मां  
पश्येदिति भयादिति भावः । अत्र शृङ्गाराभासो भयानकरसस्याङ्गं  
अनौचित्येन प्रवृत्तः आभासलक्षणं तूक्तं प्राक् ॥ ४ ॥



समाहितालंकारः ।

समाहितं तद्भावस्य शान्तेर्यत्र पराङ्गता ।

मुक्तमाना स्वयं साभूतर्जिता घनगर्जितैः ॥ ५ ॥

समाहितमिति ॥ यत्र भासस्य शान्तेर्विरतेः पराङ्गता रसाद्य-  
ङ्गत्वं तत्समाहितं स्पष्टम् । उदाहरणम् । सा कान्ता घनगर्जितैस्त-  
र्जिता भीषिता इवेति गम्योत्प्रेक्षा । सती स्वयं मुक्तमाना स्वयमेव  
त्यक्तामर्षा अभूत् । अमर्षकृतां वक्रतां हित्वा स्वयमेवाश्लिष्टवती-  
त्यर्थः । अत्रामर्षाख्यभावस्य शान्तिः शृङ्गारस्याङ्गम् । अत्र प्रहर्ष-  
णालंकारोऽप्यस्ति ॥ ५ ॥

भावोदयालंकारः ।

भावोत्पत्तेः पराङ्गत्वे भावोदय इति स्मृतः ।

सा प्रियं वीक्ष्य नम्रास्या नाशकद्वक्तुमीप्सितम् ॥ ६ ॥

भावेति ॥ भावोत्पत्तेः पराङ्गत्वे सति भावोदय इति प्रसिद्धो-  
ऽलंकारः स्मृतः । बुधैर्गदित इत्यर्थः । उदाहरणम् । सा कान्ता  
प्रियं वीक्ष्य नम्रास्या लज्जयाऽधोमुखी सती ईप्सितमर्थं वक्तुं नाश-  
कत् । अत्र व्रीडाख्यभावस्योत्पत्तिः शृङ्गारस्याङ्गम् । नायिका तु  
लज्जाप्रधानत्वान्मुग्धा ॥ ६ ॥

भावसंध्यलंकारः ।

पराङ्गभावयोर्योगो भावसंधिरलंकृतिः ।

यान्ती वेलं प्रतीक्षन्ती विलम्ब्य प्रियमाप सा ॥ ७ ॥

पराङ्गमिति ॥ पराङ्गं रसाद्यङ्गभूतो यो द्वयोर्भावयोर्योगः स  
भावसंधिर्नामालंकृतिः स्पष्टम् ॥ उदाहरणम् । सा नायिका यान्ती  
सती वेलं प्रतीक्षन्ती सती च विलम्ब्य प्रियं आप । अत्रौत्सुक्यस्य  
शङ्कायाश्च संधिः शृङ्गारस्याङ्गम् । 'अत्यारूढो हि नारीणामकालज्ञो  
मनोभवः' इति न्यायादौत्सुक्येन यान्त्यपि वेलामन्तरेण केलिगृहो  
प्रियसमागमो न स्यादिति मत्वा विलम्ब्य यातेति भावः ॥ ७ ॥

भावशबललंकारः ।

तद्भावशबलत्वं स्याद्वहूनां चेत्पराङ्गता ।

धिङ्मां भोगरतं सन्तः किं वक्ष्यन्ति त्यजामि तान् ॥ ८ ॥

तदिति ॥ चेद्यदि बहूनां भावानां पराङ्गता स्यात्तर्हि भावशब-

लत्वं नामालंकारः । 'चित्रं किर्मीरकल्माषशबलैताश्च कर्तुरे' इत्यमरः ।  
उदाहरणम् । भोगरतं विषयासक्तं मां धिक् । धिगिति निन्दायां  
तद्योगे द्वितीया । निन्दोऽहमस्मीत्यर्थः । सन्तः किं वक्ष्यन्ति सद-  
सद्वेति न वेद्मीत्यर्थः । तस्माद्दुष्टान् तान् भोगान् त्यजामि । अत्र  
विरक्तवाक्ये निर्वेदशङ्कामतीनां शान्तरसस्याङ्गत्वम् ॥ ८ ॥

प्रत्यक्षालंकारः ।

प्रत्यक्षमिन्द्रियज्ञानवर्णनं षड्विधं तु तत् ।

श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च रसित्वाघ्राय यां जनः ।

मोदते घृतपक्वां तां शङ्कुलीमर्पयामि ते ॥ ९ ॥

प्रत्यक्षमिति ॥ इन्द्रियज्ञानवर्णनं इन्द्रियजन्यज्ञानस्य वर्णनं  
प्रत्यक्षम् । अक्ष्णः समीपे प्रत्यक्षमिति सामीप्यार्थेऽव्ययीभावः ।  
अक्षाणां समीपे इति वा । तच्च षड्विधम् । श्रौत्रत्वाच्चाक्षुषरासन-  
घ्राणजमानसभेदात् । उदाहरणम् । जनः यां पचनकाले शब्दाय-  
मानां श्रोत्रेण श्रुत्वा ततः त्वचा स्पृष्ट्वा चक्षुषा दृष्ट्वा रसनेन रसित्वा  
नासया चाघ्राय मनसा मोदते सुखितोऽस्मीति वेत्ति । हे देव,  
घृतपक्वां तां शङ्कुलीं प्रसिद्धां ते तुभ्यं अर्पयामि । अनुक्रमेण षड्विधस्या-  
पीन्द्रियज्ञानस्य वर्णनमिति प्रत्यक्षालंकारः ॥ षट्पदी गाथेयम् ॥ ९ ॥

प्रतीत्यलंकारः ।

प्रतीतिर्लिङ्गिनो लिङ्गादनुमानमदूषितात् ।

निःश्वासात्सोष्मणो ज्ञातं हृदि कामाग्निरस्ति ते ॥ १० ॥

प्रतीतिरिति ॥ अदूषितात् व्यभिचारादिदोषरहितात् लिङ्गाद-  
साधारणचिह्नात् लिङ्गिनो लिङ्गवतोऽर्थस्य प्रतीतिरनुमानं स्पष्टम् ।  
उदाहरणम् । हे सखे, ते तव हृदि कामाग्निरस्तीति सोष्मणो घर्म-  
सहिताग्निःश्वासाद्वेतोर्ज्ञातम् । अत्र कामाग्निलिङ्गिनः सवाष्पनिःश्वा-  
सरूपलिङ्गात् प्रतीतिरुक्तेत्यनुमानम् । न चात्र लिङ्गं दोषवदिति  
शङ्क्यम् । विलक्षणस्य लिङ्गिनो विलक्षणलिङ्गौचित्यात् । यथा तप्त-  
तोयस्थवहेरुष्मण इति दिक् । एतत्प्रपञ्चस्तु न्यायशास्त्रे द्रष्टव्यः ॥ १० ॥

उपमानालंकारः ।

सादृश्याद्वस्तुनो भानमुपमानं प्रकीर्तितम् ।

हिङ्गुलं पद्मरागाभं तद्वर्णा हिङ्गुलाम्बिका ॥ ११ ॥



सादृश्यादिति ॥ सादृश्याद्वर्ण्यमानाद्वस्तुनः प्रकृतस्य इदमेव तन्नामकमिति भानं प्रतीतिरूपमानं प्रकीर्तितं स्पष्टम् । उदाहरणम् । पद्मरागाभं पद्मस्य कोकनदस्य राग इव रागो यस्येति पद्मरागो माणिक्यं तस्याभा इव आभा यस्येति तथोक्तं रञ्जनं द्रव्यं हिङ्गुल-संज्ञं तद्वर्णां तत्तुल्यरागा अम्बिका देवी हिङ्गुलेत्युक्ता । अत्रोपमा-नत्रयसद्भावात्संसृष्टिः । हिङ्गुलवर्णधृतिकारणं पद्मपुराणस्थे आका-शखण्डे द्रष्टव्यम् ॥ ११ ॥

शब्दालंकारः ।

श्रुत्यादिवाक्यविन्यासान्निश्चयः शब्द उच्यते ।

सांवशंभुः परं ब्रह्म कैवल्योपनिषच्छ्रुतेः ॥ १२ ॥

श्रुत्यादीति ॥ श्रुत्यादिवाक्यविन्यासाद्वेदादिवचनोपन्यासान्नि-श्चयः शब्दः शब्दाख्यप्रमाणमुच्यते स्पष्टम् । उदाहरणम् । साम्ब-शंभुः अम्बया सहितः शिव एव कैवल्योपनिषच्छ्रुतेः । तद्वाक्यश्रव-णात्परं निर्गुणं ब्रह्मेति जानामि ॥ १२ ॥

ऐतिह्यालंकारः ।

ऐतिह्यं किंवदन्ती चेत्प्रमाणत्वेन भण्यते ।

तिलमात्रमिदं लिङ्गं वर्षवर्धं विदुर्जनाः ॥ १३ ॥

ऐतिह्यमिति ॥ चेद्यदि किंवदन्ती जनवार्ता । 'किंवदन्ती जनश्रुतिः' इत्यमरः । प्रमाणत्वेन भण्यते तर्हि ऐतिह्यं इतिह प्रसिद्धं एव ऐतिह्यमिति व्युत्पत्तेः ॥ उदाहरणम् । इदं पूर्ववर्ति शिवस्य लिङ्गं तिलमात्रं वर्षवर्धं वर्षे वर्धते तथाभूतं जनाः विदुः । कथयन्तीत्यर्थः । अत्र शिवलिङ्गस्य वर्षे वर्षे तिलमात्रवृद्धौ जनवार्ता प्रमाणमिति ऐतिह्यम् ॥ १३ ॥

अर्थापत्त्यलंकारः ।

कल्पनं चान्यथासिद्ध्यर्थस्यार्थापत्तिरिष्यते ।

गङ्गा पतिव्रता साक्षादन्यथाग्निं विशेत्कथम् ॥ १४ ॥

कल्पनमिति ॥ अन्यथासिद्ध्या प्रकारान्तरेण सिद्ध्या अर्थस्य कल्पनमर्थापत्तिः इष्यते । उदाहरणम् । पतिव्रता साक्षात् गङ्गा । अन्यथाग्निं कथं विशेत् । गङ्गात्वे तु वह्निप्रवेशो न दुर्घट इति भावः ॥ १४ ॥

अलंक्रियालंकारः ।

प्रमाणत्वेन निर्दिष्टानुपलब्धिरलंक्रिया ।

अयशस्तत्र नास्तीति सत्यं यन्न श्रुतं क्वचित् ॥ १५ ॥

प्रमाणत्वेनेति ॥ प्रमाणत्वेन प्रमाणकरणत्वेन निर्दिष्टा निर्दिष्टा अनुपलब्धिरप्राप्तिः । अत्यन्ताभाव इति यावत् । अलंक्रियालंकारो भवति । उदाहरणम् । हे राजन्, तवाऽयशो नास्तीति लोकवचः सत्यं यथार्थमेव । यद्यस्मात्क्वचिदपि न श्रुतमस्माभिरिति शेषः । अस्ति चेदयशः श्रूयेत इति भावः । अत्रायशसोऽभावं प्रति श्रवणाभावः प्रमाणत्वेन दर्शित इत्यनुपलब्धिः । अभावाख्यमेतत्प्रमाणमभावग्राहकमिति वेदान्तिनः ॥ १५ ॥

संभवालंकारः ।

संभवः स्यादलंकारः प्रमाणत्वं प्रयाति यः ।

स्यान्मे कदाचिदिन्द्रत्वं चित्रा कर्मगतिर्यतः ॥ १६ ॥

श्रुतिलिङ्गादयः शब्दाः प्रपञ्चयन्तेऽपि दर्शिताः ।

भेदाः कुवलयानन्दे संक्षेपात्तानपि ब्रुवे ॥ १७ ॥

संभव इति ॥ यः संभवः प्रमाणत्वं प्रकृतार्थनिर्णायकत्वं प्रयाति स संभवो नामालंकारः स्यात् । उदाहरणम् । मे मम कदाचिदिन्द्रत्वं स्यात् भवेत् । संभावनायां लिङ् । यतः कर्मगतिः कर्मफलप्राप्तिः चित्रा नानाविधा । ततः कस्यचित्कर्मणः फलमिन्द्रत्वमपि भवत्येवेति भावः । अत्र चत्वारि प्रमाणानि काणादादीनां । षट् वेदान्तिनां अष्टौ मीमांसकानामालंकारिकाणां चेति प्रसिद्धः पन्थाः ॥ १६ ॥ १७ ॥

श्रुत्यलंकारः ।

प्रकृतार्थस्य शब्देन निर्वाहो यत्र सा श्रुतिः ।

मृत्युं हरसि भक्तानां तुष्टोमृत्युंजयोऽसि यत् ॥ १८ ॥

प्रकृतार्थस्येति ॥ यत्र प्रकृतार्थस्य शब्देन प्रमाणभूतेन निर्वाहः समर्थनं सा श्रुतिः । उदाहरणम् । हे देव, त्वं तुष्टः सन् भक्तानां मृत्युं हरसि । मोक्षं ददासीत्यर्थः । अत्र प्रमाणं दर्शयति । यद्यस्मान्मृत्युंजयोऽसि । प्रमाणभूतमृत्युंजयशब्दवाच्योऽसीत्यर्थः । मृत्युहरणसामर्थ्यं विना मृत्युंजयशब्दवाच्यत्वं न स्यादिति प्रकृतार्थसमर्थनम् ॥ १८ ॥



लिङ्गालंकारसंकरः ।

तल्लिङ्गं नाम यत्र स्याद्वर्ण्यचिह्ने प्रमाणता ।

त्रिलोक्याः शंकरः साक्षी त्रिभिर्नेत्रैः प्रतीयते ॥ १९ ॥

तदिति ॥ यत्र वर्ण्यचिह्ने वर्ण्यस्य शिवादेः चिह्ने त्रिनेत्रत्वादौ प्रमाणता प्रमाणत्वेन प्रकृतोपयोगित्वं स्यात् तल्लिङ्गं नामालंकारः स्यात् । उदाहरणम् । शंकरः त्रिलोक्याः साक्षी । 'साक्षाद्दृष्टि संज्ञायाम्' इति निपातनात्साधुः । त्रिभिर्नेत्रैः प्रतीयते ज्ञायते त्रिलोकी । नित्यसाक्षात्कारार्थमेव त्रिलोचनत्वमिति भावः । अत्र लिङ्गशब्दस्य चिह्नपरत्वात् अनुमानालंकारे नातिव्याप्तिः । वाक्यप्रमाणं तु दिङ्मात्रमुदाहृतं तस्य चान्येऽपि श्रौतस्मार्तपौराणिकत्वादयो भेदाः स्वयंमूढ्याः । प्रकरणस्थानसमाख्यानं त्रयाणां मीमांसकोक्तप्रमाणा-  
नामलंकारत्वं नास्ति । कुवलयानन्देऽनुदाहृतत्वात् ॥ १९ ॥

आचारालंकारः ।

प्रकृतार्थोपयोगित्वं यत्राचारस्य तत्र सः ।

गोपस्यापि दधि ग्राह्यं काश्यां भक्षन्ति सूरयः ॥ २० ॥

प्रकृतेति ॥ यत्राचारस्य शिष्टाचारस्य प्रकृतोपयोगित्वं वर्ण्य-  
समर्थकत्वं तत्र स आचारो नामालंकारः । उदाहरणम् । गोपस्य  
नीचजातेरपि दधि काश्यां ग्राह्यमेवान्यत्र तु नेत्यर्थः । यतस्तत्र  
सूरयः पण्डिता अपि तद्भक्षन्ति तस्मात् 'यद्यदाचरति श्रेष्ठः' इति  
न्यायेन सर्वेषामपि तद्भक्षणे दोषो नास्तीति भावः । अयं च देश-  
ग्रामकुलाचारादिभेदादनेकविधः ॥ २० ॥

आत्मतुष्ट्यलंकारः ।

आत्मतुष्टिरलंकारो यत्र स्यान्निर्णयस्तया ।

अष्टमे मासि सीमन्तो युक्तो मह्यं हि रोचते ॥ २१ ॥

इति श्रीपदवाक्यप्रमाणपारावारीणरामजीभट्टात्मजाशाधर-  
भट्टकृतमुद्दिष्टनामकं द्वितीयं प्रकरणं समाप्तम् ॥

आत्मेति ॥ तत्रात्मतुष्टिनाम प्रमाणालंकारः । यत्र तथात्म-  
तुष्ट्या निर्णयो निश्चयः स्यात् । उदाहरणम् । अष्टमे मासि सीमन्तो-  
न्नयनाख्यं कर्म नतु षष्ठे मासीत्यर्थः । तत्र प्रमाणं दर्शयति । हि  
यस्मान्मह्यं रोचते । 'रुच्यर्थानां प्रीयमाणः' इति संप्रदानत्वाच्चतुर्थी ।  
अत्र पण्डितानामेवात्मतुष्टिः प्रमाणं न तु सर्वेषाम् । तथाहि ।

‘षष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तः’ इति याज्ञवल्क्यस्मृतौ विकल्पे सत्यपि तदु-  
त्तरं नियमानां सुकरत्वात् द्वितीयः पक्षो युक्तः श्लाघ्य इति प्रथम-  
पक्षस्वीकारे तु नियमा दुर्घटा इति । एवं ‘गर्भाष्टमेऽष्टमे वान्दे  
ब्राह्मणस्योपनायनम्’ इत्यादावपि ज्ञेयम् ॥ २१ ॥

एते प्रमाणालंकाराः प्रकृतार्थसमर्थनात् ।

काव्यलिङ्गप्रपञ्चत्वमुपयान्त्येव वस्तुतः ॥ १ ॥

धरणीधरपादाब्जप्रसादासादितस्मृतेः ।

आशाधरस्य वागेषा तनोतु विदुषां मुदम् ॥ २ ॥

इति श्रीपदवाक्यप्रमाणपारावारीणरामजीभट्टात्मजाशाधरभट्टविर-  
चितायां कुवलयानन्दकारिकाव्याख्यायामलंकारदीपिकासमा-  
ख्यायां उद्दिष्टालंकारनामकं द्वितीयं प्रकरणं समाप्तम् ॥

### परिशेषप्रकरणम् ३

अथ मुक्ताप्रवालादिमिश्रहारादिसंनिभान् ।

अनुक्तान्पञ्च संक्षेपात्संस्मृष्ट्यादीन्ब्रवीम्यहम् ॥ १ ॥

अथेति ॥ स्पष्टम् ॥ १ ॥

संस्मृष्टिरलंकारः ।

संस्मृष्टिर्मिश्रतैतेषां तिलतण्डुलवत्तु या ।

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः ॥ २ ॥

संस्मृष्टिरिति ॥ एतेषामलंकाराणां तिलतण्डुलवत् तिलतण्डुल-  
योरिव । ‘तत्र तस्येव’ इति वतिप्रत्ययः । तण्डुलशब्दस्य ‘वृकणि-  
तनिताडिभ्यश्च उलच् तण्डश्च’ इत्युणादिसूत्रेण सिद्धो ङुकारमध्य  
इत्याहुः । या मिश्रिता सा संस्मृष्टिः । तिलतण्डुलदृष्टान्तेन परस्पर-  
निरपेक्षत्वं चोक्तम् । उदाहरणम् । लिम्पतीवेत्यादि । अत्रोत्प्रेक्षाद्वयं  
परस्परनिरपेक्षं स्पष्टम् ॥ २ ॥

अङ्गाङ्गीभावसंकरः ।

उत्थाप्योत्थापकत्वे स्यादङ्गाङ्गीभावसंकरः ।

शङ्खाद्वीणानिनादोऽयमुदेति महदद्भुतम् ॥ ३ ॥

उत्थाप्येति ॥ उत्थाप्योत्थापकत्वे उपकार्योपकारकभावे सा-



काङ्क्षत्वे सतीत्यर्थः । अङ्गाङ्गीभावसंकरः । अङ्गं उत्थापकं करचर-  
णादिवत् । अङ्गी तूत्थाप्यः । च्विप्रत्ययाभावे तु अङ्गाङ्गिनोर्भाव  
इति षष्ठीसमासः । तत्र दीर्घाभावेन छन्दोभङ्गभयात् च्विप्रत्यया-  
न्तपक्षः साधुः । तयोर्भावशब्दे परे च्विप्रत्ययान्तत्वं बोध्यम् । स  
चासौ संकरश्चेति कर्मधारयः । उदाहरणम् । शङ्खादित्यादि । अत्र  
रूपकातिशयोक्तेरुत्थापकत्वं विभावनायाश्चोत्थाप्यत्वमिति परस्पर-  
साकाङ्क्षकम् ॥ ३ ॥

समप्राधान्यसंकरः ।

द्वयोरपि प्रधानत्वे समप्राधान्यसंकरः ।

रत्नस्तम्भेषु संक्रान्तप्रतिबिम्बशतैर्वृतः ॥ ४ ॥

द्वयोरिति ॥ द्वयोरप्यलंकारयोः प्रधानत्वे परस्परोपकारकत्वेन  
तुल्यत्वे समप्राधान्यसंकरो भवति । अङ्गाङ्गीभावव्यत्ययादिति भावः ।  
उदाहरणम् । रत्नस्तम्भेष्वित्यादिना । अत्रोदात्तस्यातिशयोक्तेरङ्गत्वं  
तस्याश्चोदात्तालंकारस्येति समप्राधान्यम् ॥ ४ ॥

संदेहसंकरः ।

द्वयोरन्यतरस्याभेदकः संदेहसंकरः ।

चतुर्णां पुरुषार्थानां दाता देवश्चतुर्भुजः ॥ ५ ॥

द्वयोरिति ॥ द्वयोरलंकारयोर्मध्ये अन्यतरस्य कस्यचिदभेदकः  
नास्ति भेदकं यस्मिन्स तथोक्तः संदेहसंकरः स्यात् । उदाहरणम् ।  
चतुर्णामिति । अत्र चतुर्भुजस्य देवविशेषणत्वे । परिकरालंकारः ।  
सामान्यविशेषभावसंबन्धेनोभयोरपि भेदाद्विशेषत्वविवक्षायां तु  
दातेति विशेषणान्वयानुरोधात्परिकराङ्कुर इति भेदकाभावाद्द्वयोरेक-  
तरस्यानिश्चयः । आत्मतुष्टिप्राप्त्याप्येन परिकरोदाहरणं कृतमिति  
बोध्यम् ॥ ५ ॥

वाचकानुप्रवेशसंकरः ।

एकवाचकानुप्रवेशे संकरः स्यात्तथाविधः ।

तदेतत्काकतालीयमवितर्कितसंभवम् ॥ ६ ॥

एकेति ॥ द्वयोरलंकारयोरेकवाचकानुप्रवेशे सामानाधिकरण्येना-  
वस्थाने तथाविधवाचकानुप्रवेशनामालंकारः । एकशब्दानुप्रवेश इति  
पाठान्तरकल्पनेनाक्षराधिक्यं परिहरणीयम् । उदाहरणम् । तदिति ।

अत्रैकस्मिन् काकतालीये शब्दे उपमाद्वयं प्रविष्टं संसृष्टेस्त्वेकवा-  
क्यसमानाधिकरणेऽप्येकशब्दमात्रसमानाधिकरण्यं नास्ति ततो  
विशेषः ॥ ६ ॥

विचित्रसंकरः ।

एषां परस्परं योगे विचित्रः संकरो भवेत् ।

गुरुर्वचस्यर्जुनोऽयं कीर्तौ भीष्मः शरासने ॥ ७ ॥

एषामिति ॥ एषां संसृष्ट्यादीनां परस्परं योगे सामानाधिकरण्ये  
सति विचित्रो विचित्रनामा नानाविधत्वात्संकरो भवेत् । उदाहर-  
णम् । गुरुरिति । अत्रोद्देशालंकारस्य मालारूपकेण सह समप्राधा-  
न्यसंकरः । तत्रापि श्लेषरूपकयोरङ्गाङ्गिभावसंकरः । एवमन्यत्रापि  
सुधीभिरुदाहार्यम् ॥ ७ ॥

एषां दोषा गतार्थत्वादर्थदोषतया पुनः ।

नोक्ताः कुवलयानन्दे शब्दानां चाप्यलंक्रियाः ॥ ८ ॥

इति श्रीपदवाक्यप्रमाणपारावारीणरामजीभट्टात्मजा-  
शाधरभट्टविरचितं तृतीयं परिशेषप्रकरणं

समाप्तम् ॥ ३ ॥

एषामिति ॥ एषामलंकाराणां दोषाः काव्यप्रकाशादावुदाहृताः ।  
पुनस्तु शब्दार्थे । अर्थदोषतया अर्थाश्रयत्वेनेत्यर्थः । गतार्थत्वात्  
गतप्रयोजनत्वात् । अर्थदोषाणां हि काव्यनिरूपणे वक्तुमुचितत्वात्  
अलंकारप्रकरणे तदभिधानापेक्षाभावादित्यर्थः । कुवलयानन्दे नोक्ताः ।  
किंच । शब्दानामप्यलंक्रियाः यमकादयो नोक्ताः । तेषां केवलम-  
ध्यमकाव्यविषयत्वादिति भावः । न चालंकारेषु बालानामिति प्रति-  
ज्ञाभङ्गः शङ्क्यः । तत्रालंकारशब्दस्योपमादिषु लाक्षणिकत्वात् ॥ ८ ॥

आशाधरकवेर्वाचं वाचोयुक्तिविशारदाः ।

अनुगृह्णन्तु बालस्य काकली कस्य नो मुदे ॥ १ ॥

‘काकली तु कले सूक्ष्मे ध्वनौ च मधुराऽस्फुटे’ इति विश्वः ॥

इति श्रीपदवाक्यप्रमाणपारावारीणरामजीभट्टात्मजाशाधर-

भट्टकृतायां कुवलयानन्दकारिकाव्याख्यायां तृतीयं

परिशेषप्रकरणं समाप्तम् ॥



## अथ शब्दालंकारप्रकरणम् ४

अथ शब्दालंकारा निरूप्यन्ते ।

खड्गबन्धादयश्चित्रा गतप्रत्यागतादयः ।

पद्मबन्धादयश्चैव ज्ञेयाः श्लोका यथायथम् ॥ १ ॥

खड्गेति ॥ खड्गबन्धादयो गतप्रत्यागतादयः पद्मबन्धादयश्च श्लोकाः चित्राः चित्रालंकारा ज्ञेयाः । श्लोकचरणेषु क्रमव्युत्क्रमपाठाभ्यां गतप्रत्यागतः आदिशब्देन एकाक्षरद्व्यक्षरादिश्च । यथा 'सानमा नवभा रामा माराभा वनमानसा ॥ याति चारुविभामाभा भामाभाविरुचा तिया ॥ १ ॥ अत्र व्युत्क्रमपाठेन प्रथमचरणात् द्वितीयचरणं तृतीयचरणाच्चतुर्थचरणं इति गतप्रत्यागतेन चित्रालंकारः । श्लोकार्थस्तु नमतीत्येवंशीला नमा ईदृशी न भवतीत्यनमा अभिमानिनी नवभा नवदीप्तिः । मारेण कामेनाभातीति माराभा वनाय जलमाहर्तुं मानसं चित्तं यस्या इति वनमानसा । तथा चारुविभया उत्तमदीप्त्या सावल्लक्ष्मीवत् भातीति चारुविभामाभा । भामा सत्यभामा तस्या भावोऽभिप्रायोऽस्यामस्तीति भामाभाविनी सा चासौ रुक् चेति तया । विशिष्टा विशेषणे चात्र तृतीया । अयं भावः । यस्यां रुचि सत्यभामाया अपि भावस्तिष्ठति ममापीदृशी रुक् स्यात् तादृश्या तया विशिष्टा ईदृशी या रामा सा अति अतिक्रम्य याति गच्छति ॥ १ ॥

अनुप्रासश्चतुर्विधः । स्फुटानुप्रासो लाटानुप्रासो वृत्त्यनुप्रासः छेकानुप्रासश्चेति । तत्राद्यः ।

पादादिषु पदावृत्त्या स्फुटो वर्णविभेदतः ।

योगी भोगीव संयाति पश्य त्वमुभयच्युतम् ॥ २ ॥

पादादिष्विति ॥ पादस्यादौ मध्ये अन्ते वा वर्णस्य पदसंबन्धिनो हलः स्वरस्य वा विभेदेन भिन्नत्वेन कृत्वा पदस्यावृत्त्या पुनः पुनर्निरूपणात् स्फुटानुप्रासालंकारः । उदाहरणम् । हे मित्र, अयं योगी गृहाश्रमत्यागपूर्वं कृतयोगाभ्यासः पश्चाद्योगाच्च्युतो भोगीव भोगवान् गृहस्थ इव संयाति तमिममुभयलोकाच्च्युतं त्वं पश्य । अत्र योगी भोगीति पूर्ववर्णविभेदेन पदावर्तनात्स्फुटानुप्रासः । यथा वा शिवस्तोत्रे 'जनः कश्चित्कामी तव चरणगामी

यदि तदा पदं ब्रह्मादीनामपि हरति दीनाहितमिव । महेश त्वद्भ्या-  
यी यदि पुनरमायी तु पुरुषस्तदा किं निर्मायं नहि पदममायं भ-  
जति सः ॥' अत्र प्रतिचरणमेव कामी गामी दीना दीना ध्यायी  
मायी मायं मायं इति पूर्ववर्णविभेदेन पदावर्तनात् भवति स्फुटानु-  
प्रासालंकारः । कचित्पदे पूर्ववर्णविभेदः कचिन्मध्यवर्णविभेदः क-  
चिदन्यवर्णविभेदः अन्यत् सममिति बोध्यम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीयो लाटानुप्रासः—

लाटानुप्रासभूर्भिन्नाभिप्राया पुनरुक्तता ।

देवेशवेशवीक्षातो दुर्वासास्तोषमाप्तवान् ॥ ३ ॥

लाटेति ॥ यदा शब्देषु पुनरुक्तता भिन्नाभिप्राया अर्थभेदे नि-  
यन्त्रिता भवति तदा लाटानुप्रासः लाटानुप्रासालंकारः । उदाहरणम् ।  
देवेश इन्द्रः तस्य वेशः शोभा पाटवं तस्य वीक्षातः वीक्षणेन दुर्वा-  
ससो मुनेस्तोषप्राप्तिर्जाता । स्वकीयं हारं च ददाविति शेषः । अत्र  
देवेशपदे भिन्नाभिप्रायस्यार्थस्य पुनरुक्त्या लाटानुप्रासः । यथा मा-  
धवचम्पूप्रन्थे—‘आलीभिर्नलिनीर्दलैः प्रतिदिशं दूरीकृतालित्रजै-  
र्मालाकारतया पुनःपुनरुपायातैः समासेविता । ईषद्वक्रितकंधरं प्रक-  
टितप्रेमोत्करं प्रेयसी किञ्चिच्चञ्चलचेलकाञ्चलचलन्नेत्रास्बुजं पश्य-  
ति ॥’ अत्र चेलकाञ्चलचलदित्यत्र भिन्नाभिप्रायस्यार्थभेदे नियन्त्रि-  
तस्य चलचलशब्दस्य पुनरुक्त्या भवति लाटानुप्रासालंकारः ॥ ३ ॥

अथ तृतीयो वृत्त्यनुप्रासः—

आवृत्तवर्णसंपूर्ण वृत्त्यनुप्रासवद्बचः ।

जगज्जगन्निवासश्चेत्पाता नाकि वनेऽवनम् ॥ ४ ॥

आवृत्तेति ॥ यत्र आवृत्तेन पुनःपुनः कथितेन वर्णेनाक्षरमा-  
त्रेण संपूर्णं व्याप्तं वचो भवति तत्र वृत्त्यनुप्रासनामालंकारः । उदा-  
हरणम् । जगन्निवासः हरिः पाता रक्षकश्चेत्तर्हि वने यदवनं रक्षणं  
तन्निमित्तं कदाचिदपि जगत् विश्वं अकि दुःखि न स्यात् । जगन्नि-  
वास इत्यत्र विशेषणमात्रप्रयोगो विशेष्यप्रतिपत्तौ सागराम्बरादि-  
वत् । ‘अकं पापे च दुःखे च’ इति विश्वः । अत्र जगज्जगादिति वने  
वने इति चैकस्वरयोरेकहलोः पुनरावृत्त्या वृत्त्यनुप्रासः । यथा वा  
‘निःस्वेदाकुलनीलकुन्तललसत्कर्णान्तिपालीप्रियं किञ्चिन्नामितकन्ध-



राविगलितं वासः कराकर्षिणी । आयातं महिलाविलासनिपुणं प्रा-  
णप्रियं कामिनी किंचिल्लङ्घितचेलकाञ्चलचलन्नेत्राञ्चलं पश्यति ॥'  
अत्र लकारचकारयोरेकस्वरयोः भिन्नस्वरयोर्भिन्नहलोरकारेवर्णयोर-  
प्यनेकश आवृत्तिसत्त्वाद्भवति वृत्त्यनुप्रासनामालंकारः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थश्लोकानुप्रासः—

सव्यञ्जनस्वरावृत्तौ छेकानुप्रास इष्यते ।

भव्ये गव्ये वाडवानां रुचिर्मण्डे व्यजायत ॥ ५ ॥

सव्यञ्जनेति ॥ सव्यञ्जनानां स्वराणामावृत्तौ सत्यां छेकानुप्रा-  
सालंकारः । अयं भावः । यद्वलयुक्तौ योऽभिहितः तद्वलयुक्तस्य त-  
स्यावृत्तिरिति । अत्र तु स्वरावृत्तिरावश्यकी व्यञ्जनावृत्तिरप्याद्यक्ष-  
रभिन्ना । लाटानुप्रासे तु सकलस्वरव्यञ्जनानामावृत्तिः शब्दपुनरु-  
क्तयोक्तत्वादिति भेदः । उदाहरणम् । भव्ये सुन्दरे गव्ये गोसंब-  
न्धिनि मण्डे वस्तुनि तदर्शनादेव ब्राह्मणानां रुचिर्व्यजायत । पा-  
र्थयज्ञे इति शेषः । अत्र भव्ये गव्ये इति सव्यञ्जनस्वरावृत्त्या छे-  
कानुप्रासाख्योऽलंकारः । यथा हृदयकल्पलतायाम्—चञ्चलीलाश्म-  
लीलाविधिविहितमहद्व्योमयात्रान्तराले धत्ते मत्तेभकुम्भस्खलनपरि-  
लसन्मौक्तिकानीव भानि । सव्येऽसव्येऽथ हस्ते कलयति कलया  
व्याजतः शीतभानोः काश्मीरीरश्मिरीत्या स्फुरति मृगमदाङ्गामिनी  
कामिनीव ॥' अत्र नीला लीला धत्ते मत्ते काश्मीरी रश्मिरीत्यादि-  
पदेषु सव्यञ्जनस्वरावृत्तित्वाद्भवति छेकानुप्रासालंकारः ॥ ५ ॥

अथ यमकालंकारः—

सस्वरव्यञ्जनावृत्त्या स्तवकं यमकं भवेत् ।

देवं नारायणं वन्दे रमणीरमणीयकम् ॥ ६ ॥

सस्वरेति ॥ यदा सस्वराणां व्यञ्जनानामावृत्त्या कृत्वा स्त-  
वकं वर्णसमूहो भवति तदा यमकालंकारः । अत्रायं भावः । यद्यत्स्व-  
रयुक्तो यो यो हल्समुदायोऽभिहितस्तत्तत्स्वरयुक्तस्य भिन्नार्थस्य तत्त-  
द्बल्समुदायस्यावृत्तिरिति । उदाहरणम् । रमणी रामा रमणीया यस्य तं  
लक्ष्मीकान्तमित्यर्थः । समासान्तः कः । तथाभूतं नारायणं देवं श्रीहरिं  
वन्दे स्तौमि । अत्र भिन्नार्थस्य रमणीयपदस्यावृत्त्या यमकालंकारः ।  
यथाहृदयकल्पलतायाम्—'पञ्चेषुपञ्चेषुभिराहताङ्गीसंगीतसंगीतप-

रम्पराङ्गी । पद्मेव पद्मा ललितस्वहस्ता वामाक्षि वामाक्षिपतीक्षणा-  
न्तम् ॥' अत्र भिन्नार्थानां पञ्चेषुपञ्चेष्वित्यादिपदानां मध्ये प्रति-  
चरणमेव सस्वरव्यञ्जनावृत्त्या वर्णसमूहत्वाद्भवति यमकालंकारः ।  
अत्र बहुत्वसूचकं स्तवकमिति महिम्ना त्र्यक्षरप्रभृतिषु तादृगावृत्ति-  
सत्वे यमकालंकारो त्र्यक्षरावृत्तिसत्त्वे च लाटानुप्रास इत्येवायं  
भेदः ॥ ६ ॥

अथ पुनरुक्तप्रतीकाशो नामालंकारः—

पुनरुक्तप्रतीकाशं पुनरुक्तार्थसन्निभम् ।

केसरी कानने भाति वनेभातिविमर्दकः ।

भवान् सिंहासने भाति भाति सिंहासनेभवान् ॥ ७ ॥

पुनरिति ॥ वस्तुनः पुनरुक्तार्थकमिवापाततोऽवभासते यद्वा-  
क्यं तत्पुनरुक्तप्रतीकाशो नामालंकारः । यथात्रैव केसरीति । अत्र  
कानने भाति वने भाति इति शब्दयोः पुनरुक्तार्थकत्वमापाततोऽव-  
भासते । वास्तवं तु नास्ति । तथा हि । कीदृशः केसरी । वनेभा-  
तिविमर्दकः वनसंबन्धिनामिभानां हस्तिनामत्यन्तं विमर्दको मर्दन-  
कर्तेति । एवं सिंहासने भाति भातिसिंहासने इति शब्दयोरपि पु-  
नरुक्तार्थकत्वमापातत एवावभासते नतु वास्तवमस्ति । तथा हि ।  
किंभूतो भवान् भातिसिंहासनेभवान् भान्ति ते भाः सिंहासनं सिं-  
हकृतस्वकुम्भोपवेशनं तदतिक्रान्तं यैस्तेऽतिसिंहासनाः । भाश्च तेऽ-  
तिसिंहासनाश्चेति कर्मधारयः । सिंहैरपि ये हन्तुमाक्रमितुं वा न  
शक्यन्ते एतादृशा इभा हस्तिनोऽस्य सन्तीति भातिसिंहासनेभवान्  
इति पुनरुक्तार्थसन्निभसत्त्वादिद् भवति पुनरुक्तप्रतीकाशमलंकारः ७

वीक्षणाय सदसद्विवेकिनां शिक्षणाय लघुबुद्धिशालिनाम् ।

लक्ष्णैरिह विचिन्तनैर्मया लक्षिता स्वकृतपद्यपद्धतिः ॥ १ ॥

इति श्रीचिरंजीविभट्टाचार्यकृतकाव्यविलासे अलंकारमयी

द्वितीया भङ्गी संपूर्णा ॥





# अथ कुवलयानन्दकारिकाणां

टिप्पणीस्थपद्यानां च कोशः ।



| श्लोकः                          | पृष्ठं.     | श्लोकः                          | पृष्ठं.      |
|---------------------------------|-------------|---------------------------------|--------------|
| अ                               |             | अपीतक्षीवकादम्ब.                | विभा. ४०     |
| अकारणात्कार्यजन्म               | कार्यो. ४२  | अप्रस्तुतप्रशंसा स्यात्         | अप्र. ३४     |
| अकृशं कुचयोः कृशं.              | उल्ले. १२   | अब्जेन त्वन्मुखं तुल्यं श्लेषा. | ३३           |
| अक्रमातिशयोक्तिः                | अक्र. २१    | अभिलषसि यदीन्दो                 | विष. ४६      |
| अङ्गं केऽपि शशङ्किरे,           | शुद्धाप. १३ | अमन्दपुण्यसंदोह.                | सहो. २९      |
| अङ्गाधिरोपितमृगः                | अप्र. ३४    | अमरीकबरीभार.                    | मंग. १       |
| अङ्गुल्या कः कपाटं प्रहरति      | वक्रो. ८१   | अरण्यरुदितं कृतं शव.            | निद. २७      |
| अचतुर्वदनो ब्रह्मा.             | रूपका. १०   | अयं प्रमत्तमधुपः                | भ्रान्ति. १२ |
| अत्यन्तातिशयोक्ति.              | अत्य. २२    | अयं वारामेको                    | असंभ. ४४     |
| अत्युक्तिरद्भुतातथ्य.           | अत्यु. ८४   | अयं हि धूर्जटिः साक्षात् रूप.   | ९            |
| अथ मुक्ताप्रवालादि.             | ९४          | अर्थ दानववैरिणा.                | पर्या. ३७    |
| अद्य श्रयति पुण्येन             | एका. ५४     | अलंकारः परिकरः                  | परि. ३१      |
| अधरोऽयमधीराक्ष्या               | काव्या. ६१  | अलंकारेषु बालानां               | प्रति. २     |
| अधिकं पृथुलाधारात् अधि.         | ४९          | अल्पं तु सूक्ष्मादाधे.          | अल्पा. ५०    |
| अनन्तरत्नप्रभवस्य               | विक. ६३     | अविवेकि कुचद्वन्द्वं.           | विभा. ४२     |
| अनयोरनवद्याङ्गि.                | संबं. २०    | अशक्तोऽयं तावत्तव               | प्रत्य. ६१   |
| अनिष्टस्याप्यवाप्तिश्च          | विष. ४७     | अश्विनी वसतु भूप.               | मुद्रा. ७१   |
| अनुरागवती संध्या.               | विशे. ४३    | अष्टौ प्रमाणालंकाराः            | ८७           |
| अन्तर्विष्णोस्त्रिलोकी          | सारा. ५५    | असमालोच्य कोपस्ते               | काकु. ८२     |
| अन्यत्र करणीयस्य                | असंग. ४५    | असावुदयमारुहः                   | श्लेषा. ३३   |
| अन्यत्र तस्यारोपार्थः पर्यस्ता. | १४          | असंभवोऽर्थनिष्पत्तेः            | असं. ४४      |
| अन्याङ्गत्वे रसस्य स्यात् रस.   | ८७          | अस्तं याते दिवानाथे.            | तुल्य. २२    |
| अन्यासु तावदुपमर्दं.            | प्रस्तु. ३६ | अस्य क्षोणिपतेः परा.            | संभा. ६५     |
| अन्येयं रूपसंपत्तिः.            | मेदका. २०   | अहंप्रथमिकाभाजां                | समु. ५९      |
| अन्योन्यं नामयत्र स्या          | अन्यो. ५०   | अहमेव गुरुः सुदारुणानां.        | प्रती. ८     |
| अन्योपमेयलाभेन                  | प्रती. ७    | अहो केनेदृशी बुद्धिः            | वक्रो. ८१    |
| अपरां बोधनं प्राहुः             | निद. २८     | अहो खलु भुजंगस्य                | असंग. ४४     |
| अपारिजातां वसुधां               | असं. ४५     | अहो विशालं भूपाल                | अधि. ४९      |

| श्लोकः                | पृष्ठं.     |
|-----------------------|-------------|
| आ                     |             |
| आकर्णय सरोजाक्षि.     | प्रती. ८    |
| आक्षेपः स्वयमुक्तस्य  | आक्षे. ३८   |
| आक्षेपोऽन्योविधौव्य.  | आक्षे. ३९   |
| आघ्रातं परिचुम्बितं   | उल्ला. ६८   |
| आत्मतुष्टिरलंकारो.    | आत्म. ९३    |
| आबद्धकृत्रिमसटा.      | श्लेषा. ३३  |
| आभासत्वे विरोधस्य     | विरो. ३९    |
| आभासस्याङ्गता यत्र    | ऊर्ज. ८८    |
| आरूढक्षितिपालभाल      | खभा. ८२     |
| आविर्भूते शशिनि       | विनो. ३०    |
| आवृत्तवर्णसंपूर्ण     | वृत्त्य. ९८ |
| आह्लादकत्वं माधुर्यं. | ओजो. ३      |

इ

|                     |           |
|---------------------|-----------|
| इतः सरोजेषु सितेषु  | उन्मी. ७६ |
| इत्थं शतमलंकाराः    | ८६        |
| इष्यमाणविरुद्धार्थ. | विषाद. ६७ |

उ

|                         |            |
|-------------------------|------------|
| उक्तिरर्थान्तरन्यासः    | अर्था. ६२  |
| उक्तिर्व्याजस्तुतिर्नि. | व्याज. ३७  |
| उच्चैर्गजैरटनमर्थय      | समा. ४८    |
| उत्कण्ठयति मेघानां.     | आवृ. २५    |
| उत्कण्ठितार्थसंसिद्धिः  | प्रह. ६६   |
| उत्तरोत्तरमुत्कर्षः     | सारा. ५५   |
| उत्थाप्योत्थापकत्वे     | अङ्गा. ९४  |
| उदयज्ञेव सविता          | निद. २८    |
| उदात्तमृद्धिश्चरितं     | उदा. ८३    |
| उदिते कुमारसूर्ये.      | कार्यो. ४२ |
| उद्यानमास्तोद्भूता.     | कार्यो. ४१ |
| उन्नतं पदमवाप्य.        | निद. २८    |
| उन्मीलन्ति कदम्बानि     | आवृ. २५    |
| उपकारिमुखेन्दुस्य       | असङ्ग. ४४  |
| उपमानोपमेयत्वं          | उप. ६      |

| श्लोकः            | पृष्ठं. |
|-------------------|---------|
| उपमा यत्र सादृश्य | उप. ३   |

ए

|                        |           |
|------------------------|-----------|
| एकवाचकानुप्रवेशे       | वाच. ९५   |
| एकस्मिन्यद्यनेकं वा    | पर्या. ५६ |
| एकस्य गुणदोषाभ्यां.    | उल्ला. ६८ |
| एकेन बहुधोल्लेखे       | उल्ले. ११ |
| एतेषां लक्षणं वक्ष्ये  | ८७        |
| एषां दोषा गतार्थत्वात् | ९६        |
| एषां परस्परं योगे      | विचि. ९६  |

ऐ

ऐतिह्यं किंवदन्ती चेत् ऐति. ९१

क

|                          |            |
|--------------------------|------------|
| कतिपयदिवसैः क्षयं.       | संबं. २०   |
| कपिरपि च कापिशायन.       | अनु. ७५    |
| कल्पनं चान्यथासिद्धा     | अर्था. ९१  |
| कवीन्द्राणामासन्         | अत्यं. २२  |
| कस्तूरिकामृगाणां         | संभा. ६४   |
| कस्ते शौर्यमदो योद्धुं   | पर्या. ३७  |
| काकः कृष्णः पिकः कृष्णः  | गूढो. ७६   |
| काठिन्यं कुचयोः सृष्टं   | उल्ला. ६८  |
| कामं नृपाः सन्ति सह.     | दृष्टा. २७ |
| कार्यात्कारणजन्मापि      | विभा. ४३   |
| कार्याजनिर्विशेषोक्तिः   | विशे. ४३   |
| कार्ये निमित्ते सामान्ये | अप्र. ३४   |
| कार्योत्पत्तिस्तृतीया.   | कार्यो. ४१ |
| किञ्चिदाकृतसहितं         | गूढो. ७६   |
| किञ्चिदारम्भतोऽशक्य      | विशे. ५१   |
| किं पद्मस्य रुचिं.       | रूप. १०    |
| किमसुभिर्गल्पितैः        | रूप. १०    |
| किञ्चिन्मिथ्यात्वसि.     | मिथ्या. ६५ |
| कृतं प्राज्यं राज्यं     | विक. ५९    |
| कैतवापहुतिर्व्यक्तौ      | कैत. १५    |
| कैमुत्येनार्थसंसिद्धिः   | काव्या. ६१ |



| श्लोकः                | पृष्ठं.   |
|-----------------------|-----------|
| कौमुदीव तुहिनांशु.    | समा. ४७   |
| क्रमिकाप्रकृतार्थानां | रत्ना. ७२ |
| क्रमिकैकगतानां तु     | कार. ६०   |
| क सूर्यप्रभवो वंशः    | ललि. ६५   |

ख

|                      |           |
|----------------------|-----------|
| खङ्गबन्धादयश्चित्रा. | शब्दा. ९७ |
| खमिव जलं जलमिव खं    | उप. ६     |

ग

|                            |           |
|----------------------------|-----------|
| गननं गगनाकारं.             | उप. ६     |
| गजत्रातेति वृद्धभिः        | उल्ले. ११ |
| गण्डाभोगे विहरति मदैः      | अत. ७४    |
| गर्वमसंभाव्यमिमं           | प्रती. ७  |
| गलितत्वमिवाह्लाद.          | गुण. ३    |
| गिरिर्महान्गिरेरन्धिः      | सारा. ५५  |
| गुणदोषौ बुधो गृह्णन्.      | उप. ३     |
| गुणवद्वस्तुसंसर्गात्       | ६३        |
| गुणोत्कृष्टैः समीकृत्य     | तुल्य. २४ |
| गुम्फः कारणमालास्या        | कार. ५३   |
| गूढोक्तिरन्योद्देश्यं चेत् | गूढो. ७९  |
| गृहीतमुक्तरीत्यार्थ.       | एका. ५३   |
| ग्रामेऽस्मिन्प्रस्तरप्राये | गूढो. ७७  |

च

|                         |             |
|-------------------------|-------------|
| चत्वारो रसवत्प्रेय.     | ८६          |
| चन्द्रज्योत्स्नाविशद.   | रूप. ९      |
| चपलातिशयोक्तिस्तु       | चप. २१      |
| चातकचित्रचतुरः पयः.     | प्रहर्ष. ६६ |
| चित्रं तपति राजेन्द्र.  | कार्यो. ४१  |
| चूडामणिं पदे धत्ते.     | निद. २८     |
| चेद्विम्बप्रतिविम्बत्वं | दृष्टां. २६ |

छ

|                          |          |
|--------------------------|----------|
| छाया संश्रयते तर्लं      | सहो. २९  |
| छेकापह्नुतिरन्यस्य       | छेका. १५ |
| छेकोक्तिर्यत्र लोकोक्तेः | छेका. ८० |

| श्लोकः            | पृष्ठं.      |
|-------------------|--------------|
| जटा नेयं वेणीकृत. | भ्रान्ता. १४ |
| जाता लता हि शैले. | विभा. ४३     |
| जीवनग्रहणे नम्रा. | संदे. १२     |

त

|                                |            |
|--------------------------------|------------|
| तच्चेत्किंचिद्विना रम्यं विनो. | ३०         |
| तडिद्वौरीन्दुतुल्यास्या उप.    | ४          |
| तदभाग्यं धनस्यैव उल्ला.        | ६९         |
| तद्गुणः स्वगुणत्यागात् तद्गु.  | ७२         |
| तदोजसस्तद्यशसः स्थितौ प्रती.   | ८          |
| तद्भावशबलत्वं स्यात् भाव.      | ८९         |
| तद्विज्ञं नाम यत्र. लिङ्गा.    | ९३         |
| तव प्रसादात्कुसुमा.            | परि. ३१    |
| तवामृतस्यन्दिनि.               | प्रति. २६  |
| तस्य च प्रवयसो                 | परिवृ. ५७  |
| ताभ्यां तौ यदि न स्या. अव.     | ६९         |
| तिलपुष्पात्समायाति             | कार्यो. ४२ |
| तीर्त्वा भूतेशमौलि.            | परि. ११    |
| तृणाच्छुतरस्तूलः               | सास. ५५    |
| त्रातः काकोदरो येन             | श्लेषा. ३२ |
| त्रिविधं दीपकावृत्तौ आवृ.      | २५         |
| त्वं चेत्संचरसे वृषेण          | अव. ७०     |
| त्वत्खङ्गखण्डित.               | असंग. ४५   |
| त्वदङ्गमार्दवे दृष्टे तुल्य.   | २३         |
| त्वय्यागते किमिति              | रूप. १०    |

द

|                                  |            |
|----------------------------------|------------|
| दददहनादुत्पन्नो.                 | समा. ४८    |
| दानार्थिनो मधुकरा यदि            | उल्ला. ६८  |
| दिधक्षन्मरुतः पुत्रं             | विष. ४७    |
| दिवमप्युपयातानां                 | विशे. ५१   |
| दिव्यानामपि कृतविस्मयां. स्मृति. | १२         |
| दीपकैकावलीयोगात् माला.           | ५४         |
| दशा दग्धं मनसिजं                 | व्याघा. ५२ |
| दृष्ट्या केशवगोपराग.             | विवृ. ७९   |

| श्लोकः                  | पृष्ठं.    |
|-------------------------|------------|
| देवीं वाचमुपासते.       | दृष्टा. २६ |
| देहि मत्कन्दुकं राधे    | पर्या. ३७  |
| दोषस्याभ्यर्थनानुज्ञा   | अनु. ७०    |
| दोःस्तम्भौ जानुपर्यन्त. | एका. ५४    |
| द्वयोरन्यतरस्याभेदक     | संदे. ९५   |
| द्वयोरपि प्रधानत्वे     | सम. ९५     |
| द्वारं खड्गिभिरावृतं    | पूर्व. ७३  |

ध

धूमस्तोमं तमःशङ्के वस्तूत्प्रे. १७

न

|                          |              |
|--------------------------|--------------|
| न चिरं मम तापाय.         | आक्षे. ३९    |
| न तज्जलं यत्र न चारु.    | एका. ५४      |
| नन्वाश्रयस्थितिरियं      | पर्या. ५६    |
| न पद्मं मुखमेवेदं        | भ्रान्ता. १५ |
| नागरिक समधिको.           | भ्रान्ता. १४ |
| नागेन्द्र हस्तस्त्वचि.   | तुल्य. २३    |
| नाथ त्वदङ्घ्रिनख.        | अप्र. ३५     |
| नाथ मयूरो नृत्यति        | वक्रो. ८१    |
| नाथो मे विपणिं गतो       | गूढो. ७९     |
| नानार्थसंश्रयः श्लेषो    | श्लेषा. ३२   |
| नाम्बुजैर्न कमलैरुप.     | तुल्य. २२    |
| निन्दाया निन्दया व्य.    | व्याजः ३८    |
| निद्राति स्नाति भुङ्क्ते | कारक. ६०     |
| निपीय मदिरां दुरो.       | विक. ५८      |
| निरुक्त्योगतो नाम्ना.    | निरु. ८४     |
| निषेधाभासमाक्षेपं        | आक्षे. ३९    |
| नीतानामाकुलीभावं         | श्लेषा. ३३   |

प

|                          |           |
|--------------------------|-----------|
| पदार्थवृत्तिमप्येके      | व्यति. २८ |
| पद्मे त्वन्नयने स्मरामि. | लेका. १५  |
| परस्परतपःसंपत्           | मंगला. १  |
| पराङ्गभावयोर्योगे        | भाव. ८९   |
| परिणामः क्रियार्थश्चेत्  | परि. ११   |

श्लोकः पृष्ठं.

|                           |              |
|---------------------------|--------------|
| परिवृत्तिर्विनिमयो        | परि. ५७      |
| परिसंख्या निषिद्धैक.      | परि. ५८      |
| पर्यायेण द्वयोस्तच्चेत्   | उप. ६        |
| पर्यायोक्तं तदप्याहुः     | पर्या. ३७    |
| पर्यायोक्तं तु गम्यस्य.   | पर्या. ३६    |
| पर्यायो यदि पर्याये       | पर्या. ५६    |
| पलाशकुसुमभ्रान्त्या.      | भ्रान्ति. १२ |
| पादादिषु पदावृत्त्या.     | अनु. ९७      |
| पिनष्टीव तरङ्गाग्रैः.     | वस्तू. १७    |
| पिहितं परवृत्तान्त.       | पिहि. ७८     |
| पुनरुक्तप्रतीकाशं         | पुन. १००     |
| पुनःस्वगुणसंप्राप्ति.     | पूर्व. ७३    |
| पूरं विधुर्वर्धयितुं पयो. | फलो. १८      |
| पूर्वावस्थानुवृत्तिश्च    | पूर्व. ७४    |
| पृथ्वाधेयाद्यदाधारा       | अधि. ४९      |
| प्रकृतार्थस्य शब्देन      | श्रुत्य. ९३  |
| प्रकृतार्थोपयोगित्वं.     | आचा. ९३      |
| प्रतिषेधः प्रसिद्धस्य.    | प्रति. ८४    |
| प्रतीतिर्लिङ्गिनो लिङ्गा. | प्रती. ९०    |
| प्रतीपमुपमानस्य           | प्रती. ७     |
| प्रतीपमुपमानस्य           | प्रती. ८     |
| प्रत्यक्षमिन्द्रियज्ञान.  | प्रत्य. ९०   |
| प्रत्यनीकं बलवतः          | प्रत्य. ६१   |
| प्रमाणत्वेन निर्दिष्टा    | अलं. ९२      |
| प्रश्नोत्तरान्तराभिन्न.   | चित्रो. ७७   |
| प्रस्तुतेन प्रस्तुतस्य    | प्रस्तु. ३६  |
| प्रस्तुते वर्णवाक्यार्थ.  | ललि. ६५      |
| प्राक्सिद्धस्वगुणोत्कर्षो | अनु. ७५      |
| प्रौढोक्तिरुक्तार्थाहेतोः | प्रौढो. ६४   |

फ

|                           |         |
|---------------------------|---------|
| फणीन्द्रस्ते गुणान्वक्तुं | परि. ३१ |
|---------------------------|---------|

ब

|                      |           |
|----------------------|-----------|
| बहुभिर्बहुधोल्लेखात् | उल्ले. ११ |
|----------------------|-----------|



श्लोकः पृष्ठं.

बहूनां युगपद्भाव. समु. ५९  
बालेन्दुवक्राण्यपि. वस्तू. १७

भ

भजेम भवदन्तिकं अनु. ७०  
भवन्ति नरकाः पापात् कारण. ५३  
भवित्री रम्भोरु त्रिदश. नक्तो. ८१  
भावस्य चापराङ्गत्वे प्रेयो. ८८  
भाविकं भूतभावार्थ भावि. ८३  
भिक्षार्थो क प्रयातः वक्रो. ८१  
भेदकातिशयोक्तिस्तु भेद. २०  
भेदवैशिष्ट्ययोः स्फूर्ता उन्मी. ७६  
भ्रान्तापहृतिरन्य. भ्रान्ताप. १४

म

मणिः शाणोल्लीढः समर. दीप. २४  
मदुक्तिश्चेदन्तर्मदयति अव. ६९  
मधुव्रतौघः कुपितः प्रत्य. ६१  
मधूनि पद्मे पिबति एका. ५३  
मध्यः किं कुचयोः फलोत्प्रे. ९८  
मन्थानसूमिधरशैल. हेत्वप. १३  
मयि मुकुलितमाल. समा ३०  
मय्येव जीर्णतां यातु. अनु. ७०  
मलयमरुतां व्राता याता छेको. ८०  
मलिनयितुं खलवदनं विचि. ४९  
मलिकामाल्यभारिण्यः मीलि. ७५  
मीलितं यदि साद. मीलि. ७५  
मुञ्चति मुञ्चति कोशं. अक्र. २१  
मेघैर्मेदुरमम्बरं वन. प्रहर्ष. ६६  
मोहं जगत्रयभुवां असंग. ४५

य

यत्तया मेलनं तत्र उप. ५  
यत्नादुपायसिद्ध्यर्थात् प्रह. ६७  
यत्त्वन्नेत्रसमानकान्ति. प्रती. ७  
यथासंख्यं क्रमेणैव यथा. ५६

श्लोकः पृष्ठं.

यदयं रथसंक्षोभा. उल्ला. ६८  
यद्यपहुतिगर्भत्वं साप. १९  
यन्मध्यदेशादपि ते. अल्पा. ५०  
यश्च निम्बं परशुना. तुल्य. २३  
यस्मिन्विशेषसामान्य. विक. ६३  
यामि न यामीति धवे. चप. २१  
युक्तिः परातिसंधानं युत्तय. ८०  
ये रसस्याङ्गिनो धर्माः उप. ३  
योगोऽप्ययोगः संबन्धा. संबं. २०  
यो भीतो वसतौ नाथ. निद. २७

र

रक्तौ तवांग्री मृदुलौ हेतूत्प्रे. १७  
रत्नस्तम्भेषु संक्रान्त. सामा. ७५  
रत्नस्तम्भेषु संक्रान्तैः ऋद्धि. ८३  
रत्नासप्रियलाञ्छने. रत्ना. ७२  
रथस्थितानां परिवर्त. फलो. १८  
रवितप्तो गजः पद्मान्. साप. १९  
रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति विषाद. ६७  
रात्रौ रवेर्दिवा चेन्दोः हेतु. १७  
रिक्तेषु वारिकथया. कैतवा. १५  
रूपकातिशयोक्तिः स्वरू. १९

ल

लाटानुप्रासभूर्भिन्ना लाटा. ९८  
लुब्धो न विसृजत्यर्थं व्याघा. ५२  
लेशः स्यादोषगुणयोः लेश. ७१  
लोकप्रवादानुकृतिः लोको. ८०  
लोकानन्दनचन्दनद्रुम. उल्ला. ६८  
लोके कलङ्कमपहातु. विष. ४७  
लोकं पश्यति यस्याङ्गिः प्रसु. ३६

व

वक्रस्यन्दि खेदविन्दु पिहि. ७८  
वक्रोक्तिः श्लेषकाकु. वक्रो. ८१  
वदनेन निर्जितं तव आवृ. २५



वदन्ति वर्ण्यवर्ण्यानां दीप. २४  
 वदन्ती जारवृत्तान्तं. छेका. १६  
 वर्ण्यानामितरेषां वा. तुल्य. २२  
 वर्ण्येनान्यस्योपमाया प्रती. ८  
 वर्ण्योपमानधर्माणां उप. ४  
 वर्णोपमेयलाभेन प्रती. ८  
 वाक्ययोरेकसामान्ये प्रति. २६  
 वाक्यार्थयोः सदृशयोः निद. २७  
 वाञ्छितादधिकार्थस्य प्रह. ६६  
 वापी कापि स्फुरति गगने खरू. १९  
 विचित्रं तत्प्रयत्नश्चेत् विचि. ४९  
 विधाय वैरं सामर्थ्यं. अप्र. ३४  
 विधिरेव विशेषगर्हणीयो व्याज. ३८  
 विनयैर्भाति विवेच्यं. अन्यो. ५०  
 विनानिष्टं च तत्सिद्धिः समा. ४८  
 विनोक्तिश्चेद्विनाकिंचित् वि. ३०  
 विभावना विनापि स्यात् वि. ४०  
 विभिन्नवर्णां गरुडाग्रजेन. पूर्व. ७३  
 विद्योगे गौडनारीणां निद. २८  
 विरुद्धं भिन्नदेशत्वं असंग. ४४  
 विरुद्धकार्यस्योत्पत्तिं विष. ४६  
 विरुद्धात्कार्यसंपत्तिः विभा. ४२  
 विरोधे तुल्यबलयोः विक. ५८  
 विवस्वतानाधिपतेव. हेतू. १८  
 विवृतोक्तिः श्लिष्टगुप्तं विवृ. ७९  
 विशेषः ख्यातमाधारं विशे. ५१  
 विशेषः सोपि यद्येकं विशे. ५१  
 विषमं वर्ण्यते यत्र विष. ४६  
 विषय्यभेदताद्रूप्य. रूप. ९  
 वीर त्वद्विपुरमणी तद्गु. ७२  
 वेधा द्वेधा भ्रमं चक्रे. रूप. ९  
 व्यतिरेको विशेषश्चेत् व्यति. २९  
 व्याजोक्तिरन्यहेतूक्त्याव्याजो ७८  
 व्यावल्गत्कुचभार. समा. ३०

श्लोकः पृष्ठं.  
 श  
 शंभुर्विश्वमवलय्य रूप. १०  
 शमयति जलधरधारा. आवृ. २५  
 शरणं किं प्रपन्नानि सारा. ५५  
 शिखरिणि क्रतु नाम. व्याज. ३८  
 शुद्धापहृतिरन्यस्य शुद्धाप. १३  
 शुकेन्धनाग्निवत्सच्छ. प्रसा. ३  
 श्रुत्यादिवाक्यविन्या. शब्दा ९१  
 श्रुतिलिङ्गादयः शब्दाः संभा. ९२

स  
 स एव युक्तिपूर्वश्चेत् हेत्वप. १३  
 संकेतकालमनसं सूक्ष्मा. ७७  
 संगतानि मृगाक्षीणां तुल्य. २४  
 संगतान्यगुणानङ्गी. अत. ७४  
 संग्रामाङ्गणमागतेन माला. ५४  
 संजातपत्रप्रकरान्वि. तुल्य. २२  
 सन्तः सच्चरितोदय. लेशा. ७१  
 संबन्धातिशयोक्तिः स्यात् २०  
 संभवः स्यादलंकारः संभ. ९२  
 संभावना स्यादुत्प्रेक्षा संभा. १६  
 संभावनं यदीत्थं स्यात् संभा. ६४  
 समर्थनीयस्यार्थस्य काव्य. ६२  
 समं स्याद्वर्तनं यत्र समा. ४७  
 समाधिः कार्यसौकर्यं समा. ६०  
 समाहितं तद्भावस्य समा. ८९  
 समासोक्तिः परिस्फूर्तिः समा. ३०  
 सव्यञ्जनस्वरावृत्तौ छेका. ९९  
 संसृष्टिर्मिश्रितैतेषां संसृ. ९४  
 सस्वरव्यञ्जनावृत्त्या यम. ९९  
 सहोक्तिः सहभावश्चेत् सहो. २९  
 सादृश्याद्वस्तुनो भान. उप. ९०  
 साधु दूति पुनः साधु व्याज. ३८  
 साध्वीयमपरा लक्ष्मीः रूप. १०



| श्लोकः                              | पृष्ठं. | श्लोकः                            | पृष्ठं.  |
|-------------------------------------|---------|-----------------------------------|----------|
| साभिप्राये विशेष्ये तु परि.३१       |         | स्फुरदद्भुतरूपमुत्प्र.            | विशे. ५१ |
| सामान्यं यदि सादृश्या सामा.७९       |         | स्यात्स्मृतिभ्रान्तिसं. स्मृति.१२ |          |
| सारा लोकेषु विद्वांसः सारा. ५५      |         | स्याद्वाघातोऽन्यथा. व्याघा.५२     |          |
| सारूप्यमपि कार्यस्य समा.४८          |         | स्वभावोक्तिः स्वभा. स्वभा.८२      |          |
| सिद्धस्यैव विधानं यत् विध्य.८५      |         | ह                                 |          |
| सिद्धिः ख्यातेषु चेन्नाम सिद्धि. २४ |         | हालाहलो नैव विषं. पर्यस्ता. १४    |          |
| सीत्कारं शिक्षयति. छेका. १५         |         | हिताहिते वृत्तितौल्यं तुल्य. २३   |          |
| सुधैव वसुधा सत्यं व्यति. २९         |         | हेतुहेतुमतोरैक्यं हेत्व.८५        |          |
| सुवर्णपुष्पां पृथिवीं दीप. २५       |         | हेतूनामसमग्रत्वे कार्यो.४१        |          |
| सूक्ष्मं पराशयाभिज्ञे सूक्ष्मा.७७   |         | हेतोर्हेतुमता सार्धं हेत्व.८५     |          |
| सूच्यार्थसूचनं मुद्रा मुद्रा.७१     |         | हतसारमिवेन्दु. अप्र. ३५           |          |
| सौकर्येण निबद्धापि व्याघा.५२        |         | हृदयान्नापयातोऽसि विशे. ५१        |          |

संपूर्णाचेयं कुवलयानन्दकारिकाणां वर्णानुक्रमणिका ।



5



## निर्णयसागर छापखान्यांतील संस्कृत पुस्तकें.

|   |     |     |     |          |
|---|-----|-----|-----|----------|
| अभिधावृत्तिमातृका—महामहोपाध्याय श्रीमन्मुकुल- किं.रु.आ. ट.रु.आ. |     |     |     |          |
| भट्टप्रणीता तथा शब्दव्यापारविचार—श्रीमन्सम्म-                   |     |     |     |          |
| टाचार्यविरचित. ...  | ... | ... | ... | ० ६ ० २  |
| अलंकारशेखर. ...   | ... | ... | ... | ० १२ ० २ |
| कर्णभूषण—श्रीगङ्गानन्दकविराजप्रणीत. ...                         | ... | ... | ... | ० १० ० २ |
| काव्यप्रदीप—महामहोपाध्याय श्री गोविन्दविरचित, तत्सदु-           |     |     |     |          |
| पाख्यवैद्यनाथकृत टीकेसहित. हा ग्रन्थ काव्यप्रकाशा-              |     |     |     |          |
| प्रमाणें सर्वमान्य असून याचे १० उल्लास आहेत. ...                |     |     |     |          |
| ...   | २   | ०   | ०   | ६        |
| काव्यानुशासन—श्रीमद्वाग्भटविरचित, स्वकृत टीकेसह.                | ०   | ७   | ०   | २        |
| काव्यालंकारसूत्राणि—पण्डितवरवामनविरचितानि.                      | ०   | १२  | ०   | २        |
| काव्यालंकारसंग्रह—श्रीमत्प्रतीहारेन्दुराजविरचित,                |     |     |     |          |
| काव्यालंकारसारलघुवृत्तिसहित. ...                                |     |     |     |          |
| ...   | ०   | १०  | ०   | ४        |
| कुवलयानन्द—( चंद्रलोक व अलंकारचंद्रिका टीका                     |     |     |     |          |
| व वर्णक्रमकोश यांसहित ). ...                                    |     |     |     |          |
| ...   | १   | ०   | ०   | ३        |
| चित्रमीमांसा—श्रीमदप्पयदीक्षितप्रणीत, चित्रमीमांसा-             |     |     |     |          |
| खण्डन—पण्डितराज जगन्नाथविरचित. ...                              |     |     |     |          |
| ...   | १   | ०   | ०   | ४        |
| दशरूपक—श्रीधनंजयविरचित, धनिककृतअवलोक टीकेसहित. ०                |     |     |     |          |
| ...   | १२  | ०   | २   |          |
| रसगङ्गाधर—(अलंकार) महाकवि श्रीजगन्नाथपण्डित-                    |     |     |     |          |
| रायविरचित, महामहोपाध्याय नागेशभट्टकृत टीकेसहित. ३               |     |     |     |          |
| ...   | ८   | ०   | ८   |          |
| वाग्भट्टालंकार—श्रीवाग्भट्टप्रणीत, सिंहदेवगणिविरचित             |     |     |     |          |
| टीकेसहित. ...   |     |     |     |          |
| ...   | ०   | ८   | ०   | २        |
| वृत्तिशार्तिक—श्रीमदप्पयदीक्षितप्रणीत. ...                      |     |     |     |          |
| ...   | ०   | ३   | ०   | १        |
| साहित्यकौमुदी—( अलंकार ) श्रीविद्याभूषणविरचित,                  |     |     |     |          |
| कृष्णानन्दिनीनामक टीकेसह. ...                                   |     |     |     |          |
| ...   | १   | ८   | ०   | ४        |
| साहित्यसार—अच्युतरायकृत, स्वकृतव्याख्येसहित. २                  |     |     |     |          |
| ...   | ८   | ०   | ८   |          |
| साहित्यदर्पण—विश्वनाथकविप्रणीत, श्रीरामचरण-                     |     |     |     |          |
| तर्कवागीश भट्टाचार्यकृत टीकासहित. ...                           |     |     |     |          |
| ...   | ४   | ०   | ०   | ८        |

पाण्डुरङ्ग जावजी,

निर्णयसागरमुद्रणालयाधिपतिः.